भक्ति-ग्रन्थमाला का आठवाँ पुष्प

ॐ नमः शिवाय

शिवपञ्चामृतम् ।

जिसमें-

महिमामृत, नामामृत, कीर्तनामृत, ध्यानामृत तथा अभयामृत ये पांच अमृत हैं।

संकलयिता-

गौरीशंकर गनेड़ीवाला

छपरा (सारन)

तथा गोरखपुर ।

संशोधक-

पं० रामतेज पाण्डेय 'साहित्यशास्त्री'

संवत् १९९० मूल्य ।)

प्रकाशक—

गौरीशंकर गनेड़ीवाला,

गोरखपुर ।

मुद्रक—

बाबूनन्दन प्रसाद

सत्यनाम प्रेस, मैदागिन काशी ।
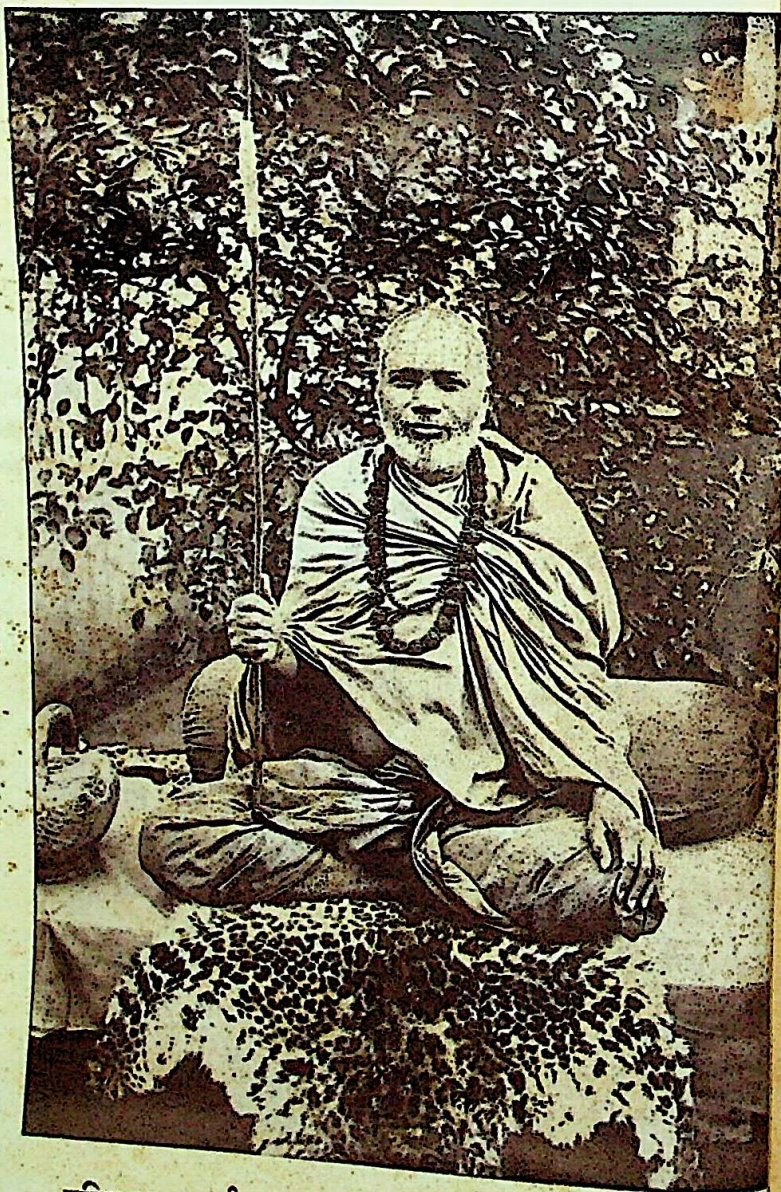
परिव्राजकाचार्य श्री १०८ घनश्यामानन्दजी तीर्थ महाराज
मुमुक्षुभवन, काशी

समर्पण

"दुर्वास-कौशिक-विरिञ्चि-मृकण्डुपुत्रान्
देवेन्द्र-बाण-हरि-शक्ति-दधीचिरामान् ।
कण्वादि-भार्गव-बृहस्पति-गोतमादी-
नेतानहम्परमपाशुपतान्नमामि" ॥

शिवभक्तों को शिवसम्बन्धी कथाओं से अन्य कौन सी वस्तु प्रिय हो सकती है। अतएव मैं पूज्यपाद श्री १०८ श्री स्वामीजी तथा शिव-भक्तों के कर कमलों में प्रेमपूर्वक यह उपहार समर्पित करता हूँ।

आपका सेवक—

गौरीशंकर।

धन्यवाद ।

इस पुस्तक के अनुवाद में मुझे पं० अम्बिका उपाध्याय एम. ए. शास्त्री जी से बड़ी सहायता मिली है । इसके लिए मैं आपका आभारी हूं ।

—गौरीशंकर ।

प्रस्तावना।

यह सब जगत् शिवमय है। सबका उपकार करने से शिव संतुष्ट होते हैं *।

जिस प्रकार शिव परमात्मा की मूर्ति से यह चराचर जगत् में व्याप्त है, वह अमित आत्मा शिव ही अपनी मूर्तियों से अधिष्ठित हो जो कुछ भी है, उसको जानता है। ब्रह्मा, विष्णु रुद्र, महेशान और सदाशिव, यह उसीकी मूर्ति है, जिससे यह सारा जगत् विकार को प्राप्त हो रहा है। शिव की और भी पञ्च ब्रह्म मूर्ति हैं। उनसे भी सब जगत् व्याप्त है। ऐसा कुछ नहीं, जहां शिव न हो। ईशान, पुरुष, घोर वामदेव, सद्योजात यह ईशान नाम की पांच मूर्तियाँ हैं, उनमें भी शिव सब जगत् में विख्यात हैं।

(१) जो उनकी पहली ईशा नाम की श्रेष्ठ मूर्ति है, वह प्रकृति का भोक्ता होकर क्षेत्रयज्ञ में स्थित है।

(२) जो तत्पुरुष नामवाली मूर्ति है, वह गुणाश्रय होकर भोगती है और अव्यक्त में स्थित है।

(३) धर्मादि अष्टांग से युक्त शिवजी के बुद्धितत्त्व में स्थित अत्यन्त पूजित अघोर मूर्ति रहती है।

(४) जो विधाता वा महादेव नामक मूर्ति है, उसको शास्त्र

---

* ॐ ईशावास्यमिदं सर्वं यत्किञ्च जगत्यां जगत्।

! के जाननेवाले अहंकार में रहनेवाली मूर्ति कहते हैं।
(५) जो सद्योजात नामक मूर्ति है, वह मनमें निवास करती है।
(१) श्रोत्र, वाणी, शब्द, विभु और आकाश की जो ईश्वरी मूर्ति हैं, उसको पंडितगण 'ईशा' कहते हैं।
(२) त्वचा, हाथ, स्पर्श तथा वायु की ईश्वरी जो ईश्वर की मूर्ति है, उसको शास्त्रज्ञ लोग 'तत्पुरुष' कहते हैं।
(३) चक्षु, चरण और अग्नि के रूप में शिव की 'अघोर' मूर्ति विद्यमान है।
(४) रसना, वायु, रस और जल की ईश्वरी 'वामदेव' नाम की मूर्ति है।
(५) घ्राण, उपस्थ, गन्ध, पृथ्वी की अधीश्वरी 'सद्योजात' नामवाली मूर्ति है।

मंगल की इच्छावालों को देव देवकी इन पांच मूर्ति के नाम का कीर्तन करना चाहिये। उस देवाधिदेव की अन्य अष्ट मूर्ति, जैसे—सूत्रों में मणि पोई हुई रहती है, इसी प्रकार उन (शिव) में यह विश्व ओत-प्रोत है। (तस्य देवाधिदेवस्य मूर्त्यष्टकमयं जगत् ॥)

तस्मिन्व्याप्य स्थितं विश्वं सूत्रे मणिगणा इव ॥ १७ ॥

(वा सं० अ० ३ उत्तर खं०)

शर्व१, भव२, रुद्र३, उग्र४, भीम५, पशुपति६, ईशान७, महादेव ८, यह उन 'शिव' की आठ मूर्तियें हैं।

भूमि१, जल२, अग्नि३, वायु४, आकाश५, क्षेत्रज्ञ ६, सूर्य७, चन्द्रमा८, यह महेश्वर की आठ कल्पित मूर्ति हैं।

(१) यह पृथ्वी चराचरात्मक जगत् को धारण करती है, यह देवादिदेव शिव की शिवात्मक मूर्ति है।

(२) जलसे सारे जगत् का जीवन है। इसी कारण यह जलात्मक मूर्ति परमात्मा शिवकी मूर्ति कहलाती है।

(३) अग्नि-बाहर भीतर जगत् को व्याप्त करने से उनकी तेजोमयी शुभमूर्ति है और घोर रूप उनकी रुद्र मूर्ति है।

(४) पवन सारे जगत् को स्पंदन करता हुआ शरीर का भरण पोषण करता है अतएव वह मूर्ति उसकी उग्र कहलाती है।

(५) सबको अवकाश देनेवाली उनकी आकाशात्मक मूर्ति है और सब प्राणियों को भय देनेवाली भीम मूर्ति है।

(६) सब क्षेत्रनिवासियों के अन्तःकरण में वह सर्वात्मा रूप से स्थित है, अतः वह जीवों की पाश काटनेवाली शिव की पशुपति मूर्ति हैं।

(७) सूर्यनाम से उनकी मूर्ति सारे जगत् को प्रकाशित करती है, इसी से वह 'ईशान' नामवाली शिव की मूर्ति स्वर्ग में चलती है।

(८) जो चन्द्रमा की किरणों से जगत् को तृप्त करती है, वह चन्द्रमूर्ति है। वह महादेव की मूर्ति 'महादेव' नामक है आठवीं शिव की व्यापक मूर्ति है और इतर (अन्य) मूर्तियों से भी व्यापक मूर्ति होने के कारण यह जगत्

'शिवात्मक' है। जैसे वृक्ष की जड़ में सींचने से शाखा फूलती फलती हैं। इसी प्रकार देवदेव शिव की पूजा से इनका शरीररूपी जगत् पुष्ट होता है।

सबको अभय देना प्रधान काम है और सबका अनुग्रहविधायक (विधानकर्ता याने नियम रचनेवाला) और सबके उपकार का कारण शिव का आराधन कहा है। जिस प्रकार पुत्र और पौत्रादि की प्राप्ति से (प्रेम करने से) पिता प्रसन्न होता है। इसी प्रकार सबकी प्रीति से याने सब प्राणी मात्र से प्रेम करने से शंकर प्रसन्न होते हैं (तथा सर्वस्य संप्रीत्या प्रीतो भवति शंकरः॥) अष्ट मूर्ति रूप से सब जगत् को व्याप्त करके स्थित हुये परम कारणरूप शिवजी का सर्वतोभाव से भजन करे याने कल्याण चाहनेवाले लोग कल्याण रूप शिव का भजन करते हुये अभय ग्रहण करें।

अष्टमूर्त्यात्मना विश्वमधिष्ठाय स्थितं शिवम्॥
भजस्व सर्वभावेन रुद्रं परमकारणम्॥३३॥

(वा० सं० अ० ३)

काशी। चैत्र. शुक्ल १३ सं. १९९० } गौरीशंकर गनेड़ीवाला।
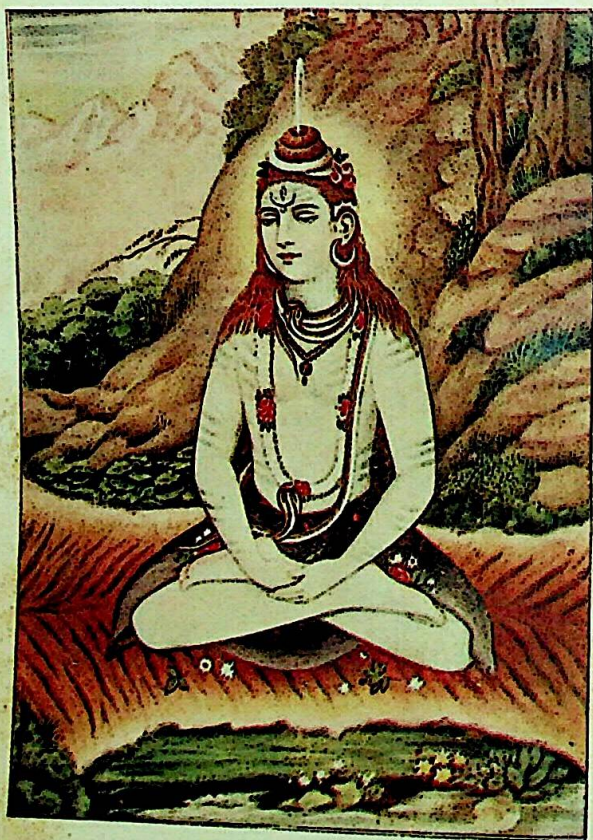
मनः प्रत्यक्चित्ते सविधमवधायात्तमरुतः
प्रहृष्यद्रोमाणः प्रमदसलिलोत्सङ्गितदृशः ।
यदालोक्याह्लादं ह्रद इव निमज्यामृतमये
दधत्यन्तस्तत्त्वं किमपि यमिनस्तत्किल भवान् ॥

GITA PRESS, GORAKHPUR.

ॐ नमः शिवाय।

महिमामृत

अवियोगोऽस्तु मे देव त्वदङ्घ्रियुगलेन वै।
एष एव वरः शम्भो नान्यं कञ्चिद्वरं वृणे॥

सम्पूर्ण वेदों तथा वेदान्त का सार और परम तत्त्व शिव ही हैं। "ईशानो ज्योतिरव्ययः, एको हि रुद्रो न द्वितीयः, यो देवानां प्रभवोद्भवश्च विश्वाधिपो रुद्रो महर्षिः" इत्यादि श्रुतियों से सिद्ध होता है कि एक शिव ही अद्वितीय हैं। अथर्वशीर्ष के प्रथम खण्ड में लिखा है—किसी समय देवताओं ने रुद्र से पूछा कि आप कौन हैं? तब उन्होंने कहा—एक मात्र मैं ही जगत् की उत्पत्ति और पालन करने वाला हूँ। मुझसे अधिक कोई नहीं है। इसी के दूसरे और तीसरे खण्ड में सब देवता शिवजी की विभूति का वर्णन किये हैं। "यो रुद्रो अग्नौ य अप्सु य ओषधीषु यो रुद्रो विश्वा भुवनाविवेश तस्मै रुद्राय नमोऽस्तु।" अर्थात् जो रुद्र अग्नि, जल, ओषधी और सब संसार में व्याप्त हैं, उनको नमस्कार है। इसी प्रकार रुद्राध्याय में "नमः स्रोतस्याय च" इस मंत्र में भी सब वस्तु में शिव का सद्भाव कहा है। "य एषोन्तर्हृदय आकाश०" इत्यादि वृहदा-

रण्यक के मंत्रों में भी यही कहा है। "अथ यदिदमस्मिन्निति" इसमें शिवको सर्वेश लिखा है। "ब्रह्मविष्ण्वग्निशुक्रार्कजलभूमिपुरोगमाः॥ सुराऽसुराः संप्रसूतास्ततः सर्वे महेश्वरा:" ब्रह्माण्डपुराण में कहा है कि ब्रह्मा, विष्णु, अग्नि, शुक्र, सूर्य, जल, भूमि आदि सब उन्हीं (शिव) से उत्पन्न हुए हैं। हरिवंश की कैलासयात्रा के प्रसंग में शिवजी ने कहा है—"हे गोविन्द ! जो तुम्हारे नाम हैं, सो मेरे ही हैं" "शिवं प्रस्तुत्य सर्वाणि ह वा एतस्य नामधेयानि" आश्वलायन के इस मंत्र में लिखा है कि शिव की स्तुति करके नामकरण करे। स्कन्दपुराण में लिखा है कि कोई ब्रह्मा, कोई विष्णु, कोई सूर्यादि की मूर्ति की उपासना करते हैं, परन्तु "प्रतिपाद्यो महादेवः स्थितः सर्वासु मूर्तिषु" इस प्रमाण से मूर्तियों में महादेव का प्रतिपादन करना चाहिये, वे ही सब में स्थित हैं। कूर्मपुराण में "गोप्ता चैव जगच्छास्ता शक्तः सर्वो महेश्वरः। यज्ञानां फलदो देवो महादेवनियोगतः" आदि वाक्यों से शिव ही को सब यज्ञ का फलदाता लिखा है। महाभारत के वनपर्व की तीर्थयात्रा के प्रसंग में—"ततो गच्छेत्सुवर्णाक्षं त्रिषु लोकेषु विश्रुतम्। यत्र विष्णुः प्रसादार्थं रुद्रमाराधयत्पुरा॥ वरांश्च सुबहूँल्लेभे दैवतैरपि दुर्लभान्" अर्थात् फिर सुवर्णाक्ष पर्वत को जाय, जहाँ विष्णु ने शिव की आराधना करके अनेक वर पाये थे, इसी तरह द्रोणपर्व में अश्वत्थामा के लिंगार्चन की कथा है। शांतिपर्व में भीष्म ने कहा है—

"यं विष्णुरिन्द्रः सूर्यश्च तथा लोकपितामहः। स्तुवंति विविधैः स्तोत्रैर्देवदेवं महेश्वरम् ।। तमर्चयन्ति ये शश्वद्दुर्गाण्यतितरन्ति ते" जिनकी ब्रह्मा, विष्णु, इन्द्र और सूर्य स्तुति करते हैं, उन शिवजी का जो पूजन करता है, उसके सब कष्ट दूर हो जाते हैं। फिर अनुशासन पर्व में शिव से ब्रह्मा विष्णु की उत्पत्ति लिखी है। "सोऽसृजद्दक्षिणादंगाद्ब्रह्माणं लोकभावनम्। वामपार्श्वात्तथा विष्णुमादौ प्रभुरथासृजत्।। अप्रज्ञातं जगत्सर्वं तदा ह्येको महेश्वरः" अर्थात् जब कुछ नहीं था, तब एक मात्र शिव थे, इत्यादि बहुत स्थल में शिव को सर्वेश्वर कहा है। हरिवंश में लिखा है कि श्रीकृष्णजी ने शिव की स्तुति कर के वर पाया है। वाल्मीकि में "रौद्राय वपुषे नमः" उत्तरकाण्ड में "ते तु रामस्य तच्छ्रुत्वा नमस्कृत्य वृषध्वजम्" ऐसा कहा है और अश्वमेघप्रकरण में रामचन्द्रजी ने शिवाराधन किया है। यथा—"विशेषाद्ब्राह्मणान्सर्वान् पूजयामास चेश्वरम्। यज्ञेन यज्ञहंतारमश्वमेधेन शंकरम् ।।" और युद्धकाण्ड में—"अत्र पूर्वं महादेवः प्रसादमकरोद्विभुः।" कहकर शिव का पूजन और शिव की सर्वोत्कृष्टता कही है। भागवत के चौथे स्कंध में दक्ष के यज्ञ में शिव की क्रोधशान्ति की इच्छावाले देवताओं से ब्रह्मा ने कहा है—"नाहं न यज्ञो न च यूयमन्ये ये देहभाजो मुनयश्च तत्त्वम्। विदुः प्रमाणं बलवीर्ययोर्वा तस्यात्मतंत्रस्य कथं विधित्सेत्।।" अर्थात् मैं, विष्णु, तुम, ऋषि और मुनि आदि कोई भी उन

शिव की महिमा को नहीं जानते। अष्टम स्कंध में—"न ते गिरित्राखिललोकपालविरिंचिवैकुण्ठसुरेन्द्रगम्यम्। ज्योतिः परं यत्र रजस्तमश्च सत्त्वं न यद्ब्रह्मनिरस्तभेदम्" कहा है इससे विष्णु ब्रह्मादि की अपेक्षा शिव की उत्कृष्टता का प्रतिपादन होता है। स्कन्दपुराण में "एषां त्रयाणामधिकः शिवः परमकारणम्" इस वाक्य से तीनों देवताओं से अधिक शिव को कहा है। इसी प्रकार पद्मपुराण में—"यस्यान्तःस्थानि भूतानि यस्मात्सर्वं प्रवर्तते। यदाहुस्तत्परं तत्त्वं स देवः स्यान्महेश्वरः ॥" इत्यादि वाक्यों द्वारा चारों वेदों ने शिव की ही स्तुति की है। विष्णुपुराण में लिखा है कि—"धिक्तेषां धिक्तेषां धिक्तेषां जन्म धिक्तेषाम्। येषां न वसति हृदये कुमतेर्यदा विमोचको रुद्रः ॥" अर्थात् जिनके हृदय में शिवभक्ति नहीं, उनको धिक्कार है। ऋग्वेद में—"अन्तरिच्छन्ति तं जनो रुद्रं परो मनीषया गृभ्णंति जिह्वया ससमिति" पुरुषसूक्त में भी—"उतामृतत्वस्येशान" इस ईशानपद से शिव का ही बोध होता है। इसी प्रकार बौधायनसूत्र में भी "रुद्रो ह्येवैतत्सर्वम्" और आश्वलायन में—"तस्मै शिवाय महते नमः सूक्ष्माक्षरात्मने" इससे शिवकी सर्वोत्कृष्टता कही है। पातञ्जल का भी—"पुरुषविशेष ईश्वरः" "तस्य वाचकः प्रणवः" यह अंश शिव का ही बोधक है। यही वार्ता वायुसंहिता के सातवें अध्याय में लिखी है। कौमुदीकार ने भी सूत्रों को शिवमूलक जानकर शिवका विषय

स्पष्ट किया है। पद्मपुराण के गीतामाहात्म्य में गीता के अठारह अध्याय को नारायण शिव की मूर्ति कहा है। "ईश्वरः सर्वभूतानाम्" और "तमेव शरणं गच्छ" यह वाक्य शिवपरक है। रसेश्वर मुनि ने भी कहा है—"कल्पान्तरे कदाचित्तु दग्ध्वा लोकान्महेश्वरः। सहसैवासृजद्विष्णुं ब्राह्मणं च निजेच्छया॥" अर्थात् शिव ने सृष्टि के आदि में ब्रह्मा और विष्णु को उत्पन्न किया है। इस तरह सब पुराण और धर्मशास्त्रादि में शिवकी उत्कृष्टता लिखी है। फिर विचार के साथ देखने से हरिहरमें कोई भेद नहीं पाया जाता। इससे बुद्धिमान् लोग इनको शास्त्रानुसार एक ही रूप मानते हैं। आगे लिखे प्रमाणों से यह बात और भी स्पष्ट हो जायगी कि शिवजी की उत्कृष्टता का प्रतिपादन करने में वेद किसी से पीछे नहीं हैं। *

यजुर्वेद—

त्र्यम्बकं यजामहे सुगन्धिं पुष्टिवर्द्धनम्। उर्वारुकमिव बन्धनान्मृत्योर्मुक्षीयमामृतात्।

दिव्य गन्ध से युक्त, मर्त्यधर्महीन, उभय लोक के फलदाता, धन-धान्यादि से पुष्टि बढ़ानेवाले, तीन नेत्रवाले शिवदेवका हम

---

* वि० वा० पं० ज्वालाप्रसादजी मिश्र (मुरादाबाद) के हरिहरैक-भाव वर्णन से।

पूजन करते हैं। वे शिवजी हमको मृत्यु, अपमृत्यु तथा संसार के मरण से मुक्त करें यानी छुड़ावें। जैसे पक्का फल अपनी ग्रन्थि से टूटकर पृथ्वी पर गिरता है इसी प्रकार हम भी जन्म-मरण के बन्धन से चिरमुक्त हो जायँ और अभ्युदय तथा निःश्रेयसरूप दोनों फलों से भ्रष्ट न हों।

नमस्ते रुद्र मन्यवऽउतोतऽइषवे नमः। नमस्ते अस्तु धन्वने वाहुभ्यामुततेनमः॥ १६।१॥ या ते रुद्र शिवा तनूरघोरापापकाशिनी। तया नस्तन्वाशन्तमयागिरिशन्ताभिचाकशीहि या०॥ १६।२॥

हे दुःख दूर करनेवाले, ज्ञान के देनेवाले अथवा पापीजनों को कर्मफल देकर रुलानेवाले रुद्रदेव! आपको, आपके बाणों को और आपकी दोनों भुजाओं को नमस्कार है, हे रुद्र देव! आपका क्रोध और बाणधारी हस्त शत्रुओं पर पड़े और हमको शान्ति हो ॥१६।१॥ कैलास पर्वत पर स्थित होकर प्राणियोंके सुखका विस्तार करनेवाले अथवा गिरा अर्थात् वाणीमें स्थित होकर सुखका विस्तार करनेवाले, पर्वत पर शयन करनेवाले हे सर्वज्ञ रुद्र! आपका शान्त और मंगलरूप विषमता रहित होने से पाप-फलको न देकर पुण्य-फल का ही देनेवाला है। उस (शान्तमय) सुख भरे शरीर से हमको आलोकित कीजिए ॥१६।२॥

नमः शम्भवाय च मयो भवाय च नमः शङ्कराय च मयस्कराय च नमः शिवाय च शिवतराय च ॥१६।४१॥

इस लोक के कल्याणकारी, जिनसे कि सुख होता है अथवा सुखरूप संसाररूप मुक्तिरूप आप शिवजी को नमस्कार है। संसार के सुखदाता पारलौकिक कल्याण के आकर (खान) आपको नमस्कार है और मोक्षसुख करनेवाले आपको नमस्कार है, कल्याणरूप एवं निष्पाप आपको नमस्कार है और भक्तों के अत्यन्त कल्याणकारक तथा उनको निष्पाप करनेवाले हे शिवजी ! आपको नमस्कार है ॥ १६।४१ ॥

अथर्ववेद—

नमस्तेऽस्त्वायते नमो अस्तु परायते नमस्ते रुद्र तिष्ठत आसीनाय ते नमः ॥ ११।१।२।१५ ॥

हे रुद्र ! हमारे सन्मुख आते हुए आपके निमित्त नमस्कार है, पराङ्मुख होकर जाते हुए आपको नमस्कार है, जहाँ-कहीं स्थित और अपने स्थान पर आसीन आपको नमस्कार है ।११।१।२।१५।

भवशर्वाविदं ब्रूमो रुद्रं पशुपतिश्च यः ॥११।३।६।९॥

भव तथा शर्व नामवाले महादेव के उद्देश्य से हम स्तुतिवाक्य कहते हुए रुद्ररूप पशुपति देव की स्तुति करते हैं।॥११।३।६।९

सहस्राक्षमतिपश्यं पुरस्ताद्रुद्रमस्यन्त बहुधा विपश्चितम् ।
मोपरम जिह्वयेयमानेयम् ॥१२।२।१७॥

सहस्रों नेत्रवाले सन्मुख से आड़ में दीखनेवाले अनेक प्रकार से (पापों को) गिरानेवाले यानी नाश करनेवाले महा बुद्धिमान्, जयशक्ति के साथ चलते हुए रुद्र (दुःखनाशक शिव) से हम उपराम न हों यानी उनको न भूलें अर्थात् उनका निरन्तर चिन्तवन करें ॥ १२।२।२७ ॥

योऽभियातो निलयते त्वां रुद्र निचिकीर्षति ।
पश्चादनुप्रयुङ्क्तेत्तं विद्धस्य पदवीरिव ॥११।२।१३॥

जो (दुष्कर्मा) गुप्त रीति से भी शिव की आज्ञा का भङ्ग करता है, शिवदेव उसे दण्ड ही देते हैं। जैसे व्याधे घायल शिकार को रुधिरादि चिन्ह से खोज कर पकड़ लेते हैं ॥ ११ । २ । १३ ॥

ऋग्वेद (रुद्रसूक्त)—

उन्माममंद वृषभो मरुत्वान्त्वक्षीयया वचसानाधमानं । घृणीवच्छायामरपा अशीया विवासेयं रुद्रस्यसुम्नं ॥ कस्यते रुद्र मृडयाकुर्हस्तो यो अस्ति भेषजोजलाषः । अप भर्तारपसो दैव्यस्याभी नु मा वृषभ चक्षमीथाः ॥ प्र बभ्रेव

वृषभाय श्वितीचे महो महीं सुष्टुतिमीरयामि। नमस्या-कल्मलीकिनं नमोभिर्गृणीमसि त्वेषं रुद्रस्य नाम ॥ स्थिरे-भिरङ्गैः पुरुरूप उग्रो बभ्रुः शुक्रेभिः पिपिशे हिरण्यैः। ईशा-नादस्य भुवनस्य भूरेर्न वा उ योषद्रुद्रादसूर्यम् ॥ अर्हन् बिभर्षि सायकानि धन्वार्हन्निष्कं यजतं विश्वरूपं। अर्हन्निदं दयसे विश्वमभ्वं न वा ओजीयो रुद्र त्वदस्ति ॥ ऋ० वे० अष्ट २–७ अ० २ वर्ग ४।

हे रुद्र ! आपका सुखदायक हाथ कहाँ है, जो हाथ सबको सुखी करनेवाला है, उस हाथ से मेरी रक्षा करो। हे काम-नाओं की वर्षा करनेवाले ! देवकृत पापों के विनाशक ! आप मुझ अपराधी के अपराध शीघ्र क्षमा करें। विश्व के भर्ता, ब-भ्रुवर्ण, कामनाओं के बरसानेवाले, शीघ्रकारी, पूजित, इस गुण-विशिष्ट रुद्र के निमित्त मैं सुन्दर स्तुति का उच्चारण करता हूँ। हे स्तुति करनेवाले ! प्रज्वलित और प्रकाशित रुद्र को नमस्कार करो अथवा हवि से उनका पूजन करो। हम महादेव का दीप्त नाम संकीर्त्तन करते हैं। दृढ़ अङ्गों से युक्त आठ मूर्तिरूप आत्मावाले बहुत रूपों से युक्त, तेजस्वी, बभ्रुवर्णवाले, रुद्र, प्रदीप्त, हिरण्मय, रमणीय अलंकारों से दीप्त होनेवाले हे ईश्वर ! इस भूत-समूह के स्वामी ! आप रुद्र से बल पृथक् नहीं होता। हे

रुद्र ! आप ही पूजा के योग्य होते हुए धनुष और बाण को धारण करते हैं, बहुत प्रकार के पूजनीय रूपों से युक्त निष्क अर्थात् हार को धारण करते तथा पूजित होते हुए इस समस्त विश्व को रक्षित रखते हो। हे रुद्र ! आपसे अधिक बलवा इस जगत् में कोई नहीं है, इस कारण आप ही इस पूजा के व्याप से युक्त होने योग्य हैं।

सामवेद—

आवोराजामध्वरस्य रुद्रम् ॥

कौषातकीब्राह्मण—

रुद्रो वै ज्येष्ठश्च श्रेष्ठश्च देवानाम् ॥२५-१३॥

जैमिनि ब्राह्मण—

ततो देवा रुद्रं नापश्यन्। ते देवा रुद्रं ध्यायन्ति। देवा ऊर्ध्व बहवः स्तुवन्ति। यो वै रुद्रः स भगवानित्यादि

शतपथब्राह्मण—

शर्व एतान्यष्टौ (रुद्रः, सर्वः, शर्वः, उग्रः, पशुपति उग्रः, अशनिः, भवः, महान्देवः,) अग्निरूपाणि ॥ १६- १-३-१८ ॥

श्रीकुलार्णवतन्त्र—

अस्ति देवि परं ब्रह्मस्वरूपी निष्कलः शिवः।
सर्वज्ञः सर्वकर्त्ता च सर्व्वेशो निर्म्मलोऽद्वयः ॥ ७

स्वयं ज्योतिरनाद्यन्तो निर्व्वैरः परात् परः।
निर्गुणः सच्चिदानन्दस्तथा वै जीवसंज्ञकः॥ ८॥

तैत्तिरीयकारण्य—

ॐ सद्यो जातं प्रपद्यामि सद्यो जाताय वै नमो नमः।
भवे भवेनाति भवेभवस्व मां भवोद्भवाय नमः॥ १॥
वामदेवाय नमो ज्येष्ठाय नमः श्रेष्ठाय नमो रुद्राय नमः कालाय नमः कलविकरणाय नमो बलविकरणाय नमः॥ २॥
बलाय नमो बलप्रमथनाय नमः सर्वभूतदमनाय नमो मनोन्मनाय नमः॥ ३॥ अघोरेभ्योऽथ घोरेभ्यो घोरघोर-तरेभ्यः। सर्वेभ्यः शर्वसर्वेभ्यो नमस्ते अस्तु रुद्ररूपेभ्यः॥४॥
तत्पुरुषाय विद्महे महादेवाय धीमहि। तन्नो रुद्रः प्रचोदयात्॥ ५॥ ईशानः सर्वविद्यानामीश्वरः सर्वभूतानाम्। ब्रह्मा-धिपतिर्ब्रह्मणोऽधिपतिर्ब्रह्मा शिवो मे अस्तु सदा शिवोम्॥६॥

बुद्धिमान् पुरुष के ज्ञान उत्पन्न करनेवाले महादेव के पंच-मुखों के मध्य में पश्चिम मुख के प्रतिपादक मंत्र का अर्थ कहते हैं— मैं तो सद्योजात नामक पश्चिम मुख की शरण को प्राप्त होता हूँ, उस सद्योजात मुख को प्रणाम है। पृथ्वी में जन्म लेने के लिए आप मुझ को प्रेरणा मत कीजिये। बल्कि जन्म के लंघन-

रूपी तत्त्वज्ञान की प्रेरणा कीजिए। संसार से उद्धार करने वाले सद्योजात के निमित्त प्रणाम है ॥ १ ॥ अब उत्तर मुख प्रतिपादक मंत्रार्थ कहते हैं—उत्तर मुख वामदेव, ज्येष्ठ, श्रेष्ठ रुद्ररूप के निमित्त नमस्कार है। काल, कलविकरण और बलविकरण के निमित्त नमस्कार है ॥ २ ॥ बल, बलप्रमथन, सर्वभूत दमन, मनोन्मन के निमित्त नमस्कार है, जो महादेव कि स[illegible] के स्वामी हैं, उन के निमित्त नमस्कार है ॥ ३ ॥ अ[illegible] दक्षिण वक्त्रके प्रतिपादक मंत्र का अर्थ कहते हैं—अघोर नामक दक्षिण वक्त्ररूप जो देव हैं, उनके विग्रह अघोर हैं। सात्त्विक होने [illegible] पहला विग्रह शान्त है, दूसरा विग्रह घोर अर्थात् राजस होने [illegible] उग्र है, तीसरा विग्रह तामस होने से घोरतर है, हे शर्व ! हे परमेश्वर!! आपके यह तीन प्रकार के विग्रह और सब रुद्ररूपों को सब देश काल में नमस्कार है ॥ ४ ॥ उत्तर मुखवाला तत्पुरुष नामक देव है, उस तत्पुरुष नाम देव को गुरु तथा शास्त्र मुख से जानते हैं और जानकर उन महादेव का ध्यान करते हैं, वह रुद्रदेव हमको ज्ञान-ध्यान के अर्थ में प्रेरणा करें ॥५॥ ईशान नामक जो ऊर्ध्वमुख देव हैं, वे वेदशास्त्रादि चौंसठ कला और विद्याओं के नियामक हैं तथा सब प्राणियों के ईश्वर हैं। वेद के पालक हिरण्यगर्भ के अधिपति ब्रह्म परमात्मा हमारे ऊपर अनुग्रह करने के निमित्त शान्त और सदा शिवरूप हों ॥ ५ ॥

श्वेताश्वतरोपनिषद् में कहा है।

क्षरं प्रधानममृताक्षरं हरः
क्षरात्मानावीशते देव एकः।
तस्याभिध्यानाद्योजनात्तत्त्वभावाद्
भूयश्चान्ते विश्वमायानिवृत्तिः॥ (अ० १)
एको हि रुद्रो न द्वितीयाय
तस्थुर्य इमाँल्लोकानीशत ईशनीभिः।
प्रत्यङ्जनास्तिष्ठति संचुकोपान्तकाले
संसृज्य विश्वाभुवनानि गोपाः॥ २॥
(अध्याय० ३)

जाबालोपनिषद्॥ १४॥

अथ हैनं ब्रह्मचारिण ऊचुः किं जप्येनामृतत्वं ब्रूहीति॥ स होवाच याज्ञवल्क्यः। शतरुद्रियेणेत्येतान्येव ह वा अमृतस्य नामानि॥ एतैर्ह वा अमृतो भवतीति एवमेवैतद्याज्ञवल्क्यः॥ ३॥

ब्रह्मबिन्दूपनिषद्॥ १२॥

निर्विकल्पमनन्तं च हेतुदृष्टान्तवर्जितम्।
अप्रमेयमनाद्यं च ज्ञात्वा च परमं शिवम्॥९॥

कैवल्योपनिषद् ॥ १३ ॥

हृत्पुण्डरीकं विरजं विशुद्धं विचिन्त्य मध्ये विशदं विशोकम्
अचिन्त्यमव्यक्तमनन्तरूपं शिवं प्रशान्तममृतं ब्रह्मयोनिम् ॥६॥
तमादिमध्यान्तविहीनमेकं विभुं चिदानन्दमरूपमद्भुतम् ।
उमासहायं परमेश्वरं प्रभुं त्रिलोचनं नीलकण्ठं प्रशान्तम् ॥
ध्यात्वामुनिर्गच्छतिभूतयोनिं समस्तसाक्षिं तमसः परस्तात् ७

हंसोपनिषद् ॥ १५ ॥

तस्मिन्मनो विलीयते मनसि संकल्पविकल्पे दग्धे पुण्य-पापे सदाशिवः शक्त्यात्मा सर्वत्रावस्थितः स्वयं ज्योतिः शुद्धो बुद्धो नित्यो निरञ्जनः शान्तः प्रकाशत इति ॥३॥

गर्भोपनिषद् ॥ १७ ॥

अहो दुःखोदधौ मग्नो न पश्यामि प्रतिक्रियाम् ।
यदि योन्याः प्रमुच्येऽहं तत्प्रपद्ये महेश्वरम् ॥

अमृतनादोपनिषद् ॥ २२ ॥

ओंकाररथमारुह्य विष्णुं कृत्वाथ सारथिम् ।
ब्रह्मलोकपदान्वेषी रुद्राराधनतत्परः ॥ २ ॥

अथर्वशिर उपनिषद् ॥ २३ ॥

ॐ देवा ह वै स्वर्गं लोकमायँस्ते रुद्रमपृच्छन्को भवा-

निति । सोऽब्रवीदहमेकः प्रथममासं वर्तामि च भविष्यामि च नान्यः कश्चिन्मत्तो व्यतिरिक्त इति ।

हृदि त्वमसि यो नित्यं तिस्रो मात्राः परस्तु सः । तस्योत्तरतः शिरो दक्षिणतः पादौ य उत्तरतः स ओङ्कारः य ओङ्कारः स प्रणवः यः प्रणवः स सर्वव्यापी यः सर्वव्यापी सोऽनन्तःयोऽनन्तस्तत्तारं यत्तारं तत्सूक्ष्मं यत्सूक्ष्मं तच्छुक्लं यच्छुक्लं तद्वैद्युतं यद्वैद्युतं तत्परं ब्रह्म यत्परं ब्रह्म स एकः य एकः स रुद्रः यो रुद्रः स ईशानः य ईशानः स भगवान् महेश्वरः ॥ ३ ॥

अथर्वशिखोपनिषद् ॥ २४ ॥

देवाश्चेति संधत्तां सर्वेभ्यो दुःखभयेभ्यः संतारयतीति तारणात्तारः । सर्वे देवाः संविशन्तीति विष्णुः । सर्वाणि बृंहयतीति ब्रह्मा । सर्वेभ्योऽन्तःस्थानेभ्यो ध्येयेभ्यः प्रदीपवत्प्रकाशयतीति प्रकाशः ॥ १ ॥ प्रकाशेभ्यः सदोमित्यन्तःशरीरे विद्युद्वद्द्योतयतीति मुहुर्मुहुरिति विद्युद्वत्प्रतीयादिशं दिशं भित्वा सर्वांल्लोकान्व्याप्नोतीति व्यापनाद्व्यापी महादेवः ॥ २ ॥

बृहज्जाबालोपनिषद् ॥ ३७ ॥

शिवश्चोर्ध्वमयः शक्तिरूर्ध्वशक्तिमयः शिवः ।
तदित्थं शिवशक्तिभ्यां नाव्याप्तमिह किंचन ॥६॥

(अध्याय २)

मन्त्रिकोपनिषद् ॥ ३४ ॥

कालः प्राणश्च भगवान्मृत्युः शर्वो महेश्वरः ।
उग्रो भवश्च रुद्रश्च ससुरः सासुरस्तथा ॥ १२ ॥
प्रजापतिर्विराट् चैव पुरुषः सलिलमेव च ।
स्तूयते मन्त्रसंस्तुत्यैरथर्वविदितैर्विभुः ॥ १३ ॥

शुकरहस्योपनिषद् ॥ ३७ ॥

अथ महावाक्यानि चत्वारि। यथा ॐ प्रज्ञानं ब्रह्म ॥१॥ ॐ अहं ब्रह्मास्मि ॥२॥ ॐ तत्त्वमसि ॥३॥ ॐ अयमात्मा ब्रह्म ॥ ४ ॥ तत्त्वमसीत्यभेदवाचकमिदं ये जपन्ति ते शिव सायुज्यमुक्तिभाजो भवन्ति ॥

निरालम्बोपनिषद् ॥ ३६ ॥

ॐ नमः शिवाय गुरवे सच्चिदानन्दमूर्तये ।
निष्प्रपञ्चाय शान्ताय निरालम्बाय तेजसे ॥

किं ब्रह्म । स होवाच महदहंकारपृथिव्यप्तेजोवाय्वाकाशत्वेन बृहद्रूपेणाण्डकोशेन कर्मज्ञानार्थरूपतया भास

…ानमद्वितीयमखिलोपाधिविनिर्मुक्तं तत्सकलशक्त्युपबृं-हितमनाद्यनन्तं शुद्धं शिवं शान्तं निर्गुणमित्यादिवाच्यमनि-र्वाच्यं चैतन्यं ब्रह्म ॥

तेजोबिन्दूपनिषत् ॥ ३६ ॥

ॐ तेजोबिन्दुः परं ध्यानं विश्वात्महृदि संस्थितम् ।
आणवं शांभवं शान्तं स्थूलं सूक्ष्मं परं च यत् ॥१॥

नादबिन्दूपनिषत् ॥ ४० ॥

अतीन्द्रियं गुणातीतं मनो लीनं यदा भवेत् ।
अनूपमं शिवं शान्तं योगयुक्तं सदा विशेत् ॥ १८ ॥

ध्यानबिन्दूपनिषत् ॥ ४१ ॥

रेचकेन तु विद्यात्मा ललाटस्थं त्रिलोचनम् ।
शुद्धस्फटिकसंकाशं निष्कलं पापनाशनम् ॥ ३२ ॥
अब्जपत्रमधः पुष्पमूर्ध्वनालमधोमुखम् ।
कदलीपुष्पसंकाशं सर्ववेदमयं शिवम् ॥ ३२ ॥

योगतत्त्वोपनिषत् ॥ ४३ ॥

बिन्दुरूपं महादेवं व्योमाकारं सदाशिवम् ।
शुद्धस्फटिकसंकाशं धृतबालेन्दुमौलिनम् ॥९९॥
पञ्चवक्त्रयुतं सौम्यं दशबाहुं त्रिलोचनम् ।
सर्वायुधैर्धृताकारं सर्वभूषणभूषितम् ॥ १०० ॥

उमार्धदेहवरदं सर्वकारणकारणम् ।
आकाशधारणात्तस्य खेचरत्वं भवेद्ध्रुवम् ॥१०१॥

जाबाल्युपनिषत् ॥ १०८ ॥

अथ हैनं भगवन्तं जाबालिं पैप्पलादिः पप्रच्छ भग
न्मे ब्रूहि परमतत्त्वरहस्यम् । किं तत्त्वं को जीवः कः पशुः
ईशः को मोक्षोपाय इति । स तमुवाच यथा तृणाशि
विवेकहीनाः परप्रेष्याः कृष्यादिकर्मसु नियुक्ताः सकलदुः
सहाः स्वस्वामिवध्यमाना गवादयः पशवः । यथा तत्स्वा
इव सर्वज्ञ ईशः पशुपतिः ।

त्रिशिखिब्राह्मणोपनिषत् ॥ ४६ ॥

ओ३म् त्रिशिखी ब्राह्मण आदित्यलोकं जगाम
गत्वोवाच । भगवन् किं देहः किं प्राणः किं कारणं किमात्
सहोवाच सर्वमिदं शिव एव विजानीहि । किंतु नित्यः शुद्ध
निरञ्जनो विभुरद्वयः शिव एकः स्वेन भासेदं सर्वं दृ
तप्तायःपिण्डवदेकं भिन्नवदवभासते ।

भस्मजाबालोपनिषत् ॥ ६० ॥

कैलासशिखरावासमोंकारस्वरूपिणं महादेवमुमार्धकृत
शेखरं सोमसूर्याग्निनयनमनन्तेन्दुरविप्रभं व्याघ्रचर्माम्बरध

मृगहस्तं भस्मोद्धूलितविग्रहं तिर्यक्त्रिपुंड्रेखाविराजमान-
भालप्रदेशं स्मितसंपूर्णपञ्चविधपञ्चाननं वीरासनारूढम-
प्रमेयमनाद्यनन्तं निष्कलं निर्गुणं शान्तं निरञ्जनमनामयम् ।

श्रीजाबालिदर्शनोपनिषत् ॥ ६३ ॥

नष्टे पापे विशुद्धं स्याच्चित्तदर्पणमद्भुतम् ।
पुनर्ब्रह्मादिभोगेभ्यो वैराग्यं जायते हृदि ॥ ४६ ॥
विरक्तस्य तु संसाराज्ज्ञानं कैवल्यसाधनम् ।
तेन पापापहानिः स्याज्ज्ञात्वा देवं सदाशिवम् ॥४७॥

पञ्चब्रह्मोपनिषत् ॥ ६६ ॥

अथ पैप्पलादो भगवान्भो किमादौ किं जातमिति ।
किं भगव इति । अघोर इति । किं भगव इति । वामदेव
इति । किं वा पुनरिमे भगव इति । तत्पुरुष इति । किं वा
पुनरिमे भगव इति । सर्वेषां दिव्यानां प्रेरयिता ईशान इति ।
ईशानो भूतभव्यस्य सर्वेषां देवयोगिनाम् । कति वर्णाः ।
कति भेदाः । कति शक्तयः । यत्सर्वं तद्गुह्यम् । तस्मै नमो
महादेवाय महारुद्राय प्रोवाच तस्मै भगवान्महेशः ॥

पाशुपतब्रह्मोपनिषत् ॥ ८० ॥

वैश्रवणो ब्रह्मपुत्रो बालखिल्यः स्वयंभुवं परिपृच्छति

जगतां का विद्या का देवता जाग्रत्तुरीययोरस्य को देवे
यानि तस्य वशानि कालाः कियत्प्रमाणाः कस्याज्ञय
रविचन्द्रग्रहादयो भासन्ते कस्य महिमा गगनस्वरूप एतद
श्रोतुमिच्छामि नान्यो जानाति त्वं ब्रूहि ब्रह्मन् ।

स्वयंभूरुवाच कृत्स्नजगतां मातृका विद्या द्वित्रिवर
सहिता द्विवर्णमाता त्रिवर्णसहिता । चतुर्मात्रात्मकोङ्का
मम प्राणात्मिका देवता । अहमेव जगत्त्रयस्यैकः पतिः । म
वशानि सर्वाणि युगान्यपि । अहो रात्रादयो मत्संवर्धि
कालाः । मम रूपा रवेस्तेजश्चन्द्रनक्षत्रग्रहतेजांसि
गगनो मम त्रिशक्तिमायास्वरूपः नान्यो मदस्ति ।

रुद्रहृदयोपनिषत् ॥ ८८ ॥

श्रीसर्वदेवात्मको रुद्रः सर्वे देवाः शिवात्मकाः ॥ १ ॥
श्रीरुद्ररुद्ररुद्रेति यस्तं ब्रूयाद्विचक्षणः ॥ १६ ॥
कीर्तनात्सर्वदेवस्य सर्वपापैः प्रमुच्यते ।
धनुस्तारं शरो ह्यात्मा ब्रह्म तल्लक्ष्यमुच्यते ।
अप्रमत्तेन वेद्धव्यं शरवत्तन्मयो भवेत् ॥ ३८ ॥
लक्ष्यं सर्वगतं चैव शरः सर्वगतो मुखः ।
वेद्धा सर्वगतश्चैव शिवलक्ष्यं न संशयः ॥ ३९ ॥

योगकुण्डल्युपनिषत् ।

तदभ्यासप्रदातारं शिवं मत्त्वा समाश्रयेत् ॥ १३ ॥

शरभोपनिषत् ॥ ५२ ॥

अथ हैनं पैप्पलादो ब्रह्माणमुवाच भो भगवन् ब्रह्मविष्णुरुद्राणां मध्ये को वा अधिकतरो ध्येयः स्यात्तत्त्वमेव नो ब्रूहीति । तस्मै स होवाच पितामहश्च हे पैप्पलाद शृणु वाक्यमेतत् ।

बहूनि पुण्यानि कृतानि येन तेनैव लभ्यः परमेश्वरोऽसौ ।
यस्याङ्गजोऽहं हरिरिन्द्रमुख्याः मोहान्न जानन्ति सुरेन्द्रमुख्याः १
प्रभुं वरेण्यं पितरं महेशं यो ब्रह्माणं विदधाति तस्मै ।
वेदांश्च सर्वान्प्रहिणोति चाग्र्यं तं वै प्रभुं पितरं देवतानाम् २
ममापि विष्णोर्जनकं देवमीड्यं योऽन्तकाले सर्वलोकान्संजहार ३
स एकः श्रेष्ठश्च सर्वशास्ता स एव वरिष्ठश्च ।
शिव एव सदा ध्येयः सर्वसंसारमोचकः ।
तस्मै महाग्रासाय महेश्वराय नमः ॥ ३१ ॥

शाण्डिल्योपनिषत् ॥ ६१ ॥

अथ कस्मादुच्यते महेश्वर इति । यस्मान् महत ईशः शब्दध्वन्या चात्मशक्त्या च महत ईशते तस्मादुच्यते महेश्वर इति ।

पंचाक्षर मंत्र की महिमा—

त्रिपुरातापिन्युपनिषत् ॥ ८३ ॥

शिवोऽयं परमो देवः शक्तिरेषा तु जीवज्ञा ॐ नमः शिवायेति याजुषमन्त्रोपासको रुद्रत्वं प्राप्नोति । कल्याणं प्राप्नोति य एवं वेद ।

सर्वव्रतेषु संपूज्य देवदेवमुमापतिम् ॥
जपेत्पंचाक्षरीं विद्यां विधिनैव द्विजोत्तम ॥१॥

(लिङ्गाध्याय ५)

सूतजी कहते हैं कि हे मुनीश्वरों ! सब व्रतों में शिव-पूजा करके विधि से पंचाक्षरी विद्या का जप करै । तभी व्रत सफल होता है । ऋषियों ने पूछा कि पंचाक्षरी विद्या कौन है ? उसका क्या प्रभाव है और जपका क्या विधान है । यह हमारी श्रवण करने की इच्छा है, आप वर्णन करें ।

सूतजी बोले—हेमुनीश्वरों ! एक समय पार्वतीजी के प्रति शिवजी ने जैसा कथन किया था, वही हम आपको सुनाते हैं ।

पंचाक्षरस्य माहात्म्यं वर्षकोटिशतैरपि ।
न शक्यं कथितुं देवि तस्मात्संक्षेपतः शृणु ॥१॥

श्रीमहादेवजी कहने लगे—पंचाक्षर मंत्र के पूरे माहात्म्य

को करोड़ों वर्षों में भी कोई कहने को समर्थ नहीं है, परन्तु संक्षेप से हम सुनाते हैं। प्रलयकाल में स्थावर, जंगम, देव, असुर, नाग इत्यादि नष्ट हो जाते हैं। प्रकृति के रूप में तुम भी लीन हो जाती हो। तब हम एकाएकी रहते हैं, कोई दूसरा अवशिष्ट नहीं रहता। उस समय वेद और शास्त्र हमारी शक्ति द्वारा पालन किये हुए पंचाक्षर मंत्र में निवास करते हैं। फिर जब हम दो रूप धारण करते हैं तब हमारी प्रकृति ही मायामय शरीर धारणकर नारा-यणरूप से समुद्र में शयन करती है। उसके नाभिकमल से पंचमुख ब्रह्मा उत्पन्न हो सृष्टि करने की सामर्थ्य के लिए प्रार्थना करते हैं। एक बार ब्रह्माजी की प्रार्थना सुन उनके हित के लिए मैंने पाँच मुखों से पाँच अक्षरों का उच्चारण किया। उन वर्णों को ब्रह्माजी ने पाँच मुखों से ग्रहण किया और वाच्य-वाचक भाव करके परमेश्वर को जाना। पाँच अक्षरों करके त्रैलोक्य पूजित शिव वाच्य है। यह पंचाक्षर मंत्र शिवका वाचक है। उस मन्त्र को तथा उसकी विधि को जानकर बहुत काल जप कर सिद्धि पाकर के जगत् के हित के अर्थ अपने पुत्रों को भी ब्रह्माजी ने उस पंचाक्षर मन्त्र का उपदेश किया। ब्रह्माजी ने उस मन्त्र को पाकर भगवान् शिवजी को प्रसन्न करने के लिए मेरु पर्वत के मुंजवान् शिखर पर दिव्य हजार वर्ष तक तप किया। उनकी दृढ़ भक्ति देख भगवान् ने प्रत्यक्ष दर्शन देकर लोकहित के लिए

पंचाक्षर मंत्र के ऋषि, छन्द, देवता, शक्ति, बीज, षडंगन्यास, दिग्बन्ध और विनियोग का उपदेश किया।

वे ऋषिगण भी इस तरह मन्त्र का माहात्म्य सुनकर अनुष्ठान करने लगे क्योंकि उसी के प्रभाव से देवता, मनुष्य, असुर चार वर्णों के धर्मादि, वेद, ऋषि तथा शाश्वत धर्म और यह जगत् स्थित है।

पंचाक्षर मन्त्र अल्पाक्षर है। बहुत अर्थ करके युक्त है। वेदों का सार, मुक्ति का देनेवाला, असंदिग्ध, अनेक सिद्धि देनेवाला, सुख से उच्चारण करने योग्य, सब कामना देनेवाला, सब विद्याओं का बीज मंत्र, सब मन्त्रों में आदि मन्त्र, वट-बीज की भाँति बहुत विस्तार युक्त और परमेश्वर का वाक्य पंचाक्षर ही है उसके आदि में प्रणव लगा देने से वह षडक्षर हो जाता है।

पंचाक्षर मन्त्र तथा षडक्षर मन्त्र में वाच्य वाचक भाव करके शिव स्थित है। शिव वाच्य है। और मन्त्र वाचक है यह वाच्य वाचक भाव अनादि सिद्ध है। जिस पुरुष के हृदय में पंचाक्षर मंत्र विद्यमान है। उसने मानो सब शास्त्र और वेद पढ़ लिया क्योंकि शिव ही ज्ञान है, इतना ही परम पद है, इतनी ही ब्रह्म विद्या है इस लिए नित्य पंचाक्षर को जपै। पंचाक्षर भगवान् शिवजी का हृदय, गुह्य से भी गुह्य और मोक्ष ज्ञान का सब से उत्तम साधन है।

न्यास तीन प्रकार का है—उत्पत्ति, स्थिति और संहार, उत्पत्ति न्यास ब्रह्मचारियों को करना चाहिए। २ स्थिति न्यास गृहस्थ के करने योग्य है। ३ संहार न्यास के एकमात्र संन्यासी अधिकारी हैं।

इस प्रकार गुरु से प्राप्त पंचाक्षर मन्त्र का जप करे। क्योंकि सब यज्ञों में जपयज्ञ उत्तम है और सब यज्ञों में हिंसा होती है, किन्तु जप यज्ञ हिंसा रहित है। इसी से और सब यज्ञ, दान, तप आदि जपयज्ञ के षोडशांश की भी तुलना नहीं कर सकते। जप करने से देवता प्रसन्न होते हैं और भोग तथा मोक्ष देते हैं। यक्ष, राक्षस, पिशाच ग्रहादि भी भयभीत होकर जप करनेवाले से दूर रहते हैं। जप से पुरुष मृत्यु को भी जीत लेता है। यदि इसका निरन्तर जप करै तो अवश्य कल्याण होवै।

न्यास करते समय पहले करन्यास, बाद में देहन्यास, पीछे अंगन्यास करै।

पुरश्चरण के समय मन्त्र के वर्णों से चौगुना लक्ष जप करै। रात्रि के समय भोजन करै। सब प्रकार के नियम से रहै। आसन बाँध पूर्व मुख या उत्तर मुख बैठ कर एकाग्र चित्त हो मौन भाव से जप करै और आदि अन्त में पंचाक्षर जप पूर्वक प्राणायाम करै। अन्तमें १०८ वीज (ॐ) मन्त्र का जप करै।

(ॐ) हृदयाय नमः (न) शिरसे स्वाहा (मः) शिखायै व
(शि) कवचाय हुँ (वा) नेत्राय वौषट् (य) अस्त्राय फट्।

जपके प्रभाव को जानकर सदाचार में तत्पर हो निरंतर
करै तो अवश्य कल्याण हो । आचारहीन पुरुष का सब सा
निष्फल होता है । परम धर्म और परम तप आचार ही है । आ
रयुक्त पुरुष को कहीं भी भय नहीं रहता । सदाचार के पालन
से पुरुष ऋषि और देवता तक बनजाते हैं । मुख्यत: असत्य
त्याग करै क्योंकि सत्य ब्रह्म है और असत्य ब्रह्म का दूषण है। अभ

असत्य तथा कठोर वाक्य, पैशुन्य (चुगली), परस्त्र
पराया धन तथा हिंसा इनको मन वचन कर्म से त्याग देवे । गौ

दीर्घायु चाहनेवाला पवित्र होकर गंगादि नदियों
लक्ष पंचात्तर मंत्र का जप करै । दूर्वा के अंकुर, तिल और गु
(गिलोय) का दश हज़ार हवन करे ।

अपमृत्यु निवारण के लिए शनिवार को अश्वत्थ वृक्ष
स्पर्श करै और जप करे ।

व्याधि दूर करने के लिए एकाग्र चित्त हो एक लक्ष जप
और नित्य आककी समिधा से अष्टोत्तर शत हवन करै ।

उदर रोग के शान्त्यर्थ ५ लक्ष मंत्र जप करके दश ह
हवन करै । नित्य सूर्य के सम्मुख पवित्र जल को अष्टोत्तर श
बार अभिमंत्रण करके पान करै ।

इति ।

* श्रीगणेशाय नमः *

शिवनामामृतम् ।

हे काशीनाथ कृपालु कृपा यह कीजै, शिव ३ मैं रटूँ यही वर दीजै ।
कभी न भूलूँ मधुर मूर्त्ति मम प्रेम पसीजै, योगी मन खोजत जाहि वही वर दीजै ॥
मम मानस में हंस बने शिव विचरै, रोम रोम रम रहे प्रेम रस भीजै ।
गौरीशंकर–दास विनय सुन लीजै, मम हृदयकंज में वास निरंतर कीजै ॥

लीयते शमनाद्भीतिः क्षीयते भवबन्धनम् ।
यन्नाम्ना तमहं वन्दे शिवकल्पतरुं शिवम् ॥ १ ॥

शिवशिवशिवेति नामनि तव निरवधि नाथ जप्यमानेऽस्मिन् ।
आस्वादयन् भवेयं कमपि महारसमपुनरुक्तम् ॥ २ ॥

"शिव" * त्रिगुण रहित होने से 'शिव' कहलाते हैं । जिनके नाम स्मरण मात्र से ही लोग पवित्र हो जायँ उनको शिव कहते हैं ।

"शि" शब्द पापविनाश करने के अर्थ में तथा 'व' मुक्ति

---

* नामस्मृतिमात्रेण पावय । शिवो निस्त्रैगुण्यतया शुद्धत्वाच्छिवः । (श्रीमच्छंकराचार्यः)

देने के अर्थ में है, यह पापों का नाश करनेवाला तथा मनुष्य को मोक्ष देनेवाला है, अतः "शिव" ऐसा कहा गया है। जिसकी वाणी में कल्याणदायक शिव नाम प्रवृत्त होता है, निश्चय ही उसके करोड़ों जन्म के पाप नष्ट होजाते है अथवा। = "शि" शब्द मंगल अर्थ में तथा 'व' यह दातृवाची है। अतएव जो मंगल का देनेवाला, है वह शिव है। जो शिव सदा मनुष्यों का कल्याण करता है ('कल्याण' नाम मोक्ष का है) अर्थात् मोक्ष देता है, इसी से वह 'शिव' कहलाता है।

शिव शब्द का अर्थ है शोभन। श्व, श्रेयस्, शिव, भद्र इत्यादि शब्द इसके पर्यायवाचक हैं। सर्वज्ञत्व आदिक सुन्दर गुण जिनमें हों, उन्हीं का नाम शिव है। शिवपुराण में तथा अन्य शैव ग्रन्थों में सर्वज्ञता आदिक गुण अङ्ग और अव्यय भेद से दो प्रकार के बताए गए हैं। ❀ सर्वज्ञता, तृप्ति, अनादिबोध

= शिशब्दो मंगलार्थश्च वकारो दातृवाचकः। मंगलानां प्रदाता यः स शिवः परिकीर्तितः ॥ १ ॥ (ब्रह्मवैवर्ते ब्रह्मखण्डे) 'शि' यह अक्षर मंगलार्थक है और 'व' दानवाचक है। इसी से पंडित लोगों का कहना है कि जो मंगल का देनेवाला हो, उसे 'शिव' कहना चाहिए।

❀ सर्वज्ञता तृप्तिरनादिबोधः स्वतन्त्रता नित्यमलुप्तशक्तिः ॥ अनन्तशक्तिश्च विभोर्विधिज्ञाः षडाहुरङ्गानि महेश्वरस्य ॥ ज्ञानं विरागतैश्वर्यं तपः सत्यं क्षमा धृतिः। स्रष्टृत्वमात्मसंबोधो ह्यधिष्ठातृत्वमेव च ॥ अव्ययानि दशैतानि नित्यं तिष्ठन्ति शंकरे।

स्वतन्त्रता, सर्वकालीन अलुप्त शक्ति और अनन्त शक्ति ये ६ शिव के अङ्ग हैं। ज्ञान, वैराग्य, तप, सत्य, क्षमा, धृति, स्रष्टृत्व आत्मसम्बोध और अधिष्ठातृत्व ये १० अव्यय शिवजी में सदा रहते हैं।

सदाशिव निष्कल अर्थात् कलारहित हैं। वेदों में भी कहा गया है कि भगवान् शिवकला रहित हैं, उनमें किसी प्रकार की क्रिया नहीं है, वे परम शान्त हैं। न तो उन में किसी प्रकार का दोष है और न किसी प्रकार की अपवित्रता। इसी प्रकार वातूल शुद्ध में बताया गया है कि शिवरूपी परम तत्त्व कला रहित हैं। कला रहित होने के कारण उनमें किसी प्रकार का गुण होना असम्भव है। तथापि वे संसार के उद्धार के निमित्त कला सहित हो जाते हैं। शास्त्रों में कहा गया है कि *"सब तत्त्वों की सृष्टि के लिए, संसार की उत्पत्ति के लिए और योगियों के उपकार के लिए भगवान् शिव अपनी इच्छा से ही शरीर धारण करते और इस प्रकार वे सकल तथा सगुण बन जाते हैं"। वातूलशुद्ध में एक वचन मिलता है कि ×"योगियों ज्ञानियों और मन्त्रसाधकों के जप तथा पूजा के

---

* सृष्टयर्थं सर्वतत्वानां लोकस्योत्पत्तिकारणात् ॥
योगिनामुपकाराय स्वेच्छया गृह्यते तनुम्'

× तथैव योगिनां चापि ज्ञानिनां मन्त्रिणामपि ।
जपपूजानिमित्ताय निष्कलं सकलं भवेत्' (वातूलशुद्धे)

निमित्त भगवान् सदाशिव कलारहित होते हुए भी कलास-हित हो जाते हैं" । भगवान् शिव अपने आश्रय में रहनेवाली परा शक्ति के द्वारा कल्पित गुणों को लेकर सगुण और सकल वन जाते हैं ।

भगवान् शिव आणव, कार्मण एवं मायेय नामक तीन मलों से रहित होने के कारण बहुत ही शोभन हैं । अतः उनका नाम 'शिव' है । जीव का दूसरा नाम अणु है । उस जीव का अविद्या से सम्बन्ध है और इस सम्बन्ध के कारण अनादि काल से उसका इस संसार में आवागमन होता रहता है । इसी अविद्या सम्बन्ध को 'आणव मल' कहते हैं । अनादि काल से किए गए कर्मों के फलों की वासना को 'कार्मण' मल कहते हैं । सच्चिदानन्द स्वरूप परमात्मा चिद्घन और प्रकाशमान है इस बात को सिद्ध करने के लिए सब सामग्रियाँ रहते भी वह नहीं है और उसका प्रकाश भी कहीं नहीं है इस प्रकार का यथार्थ वस्तु को छिपानेवाला एक आवरण है उसीका नाम मायेय मल है और यह सभी शैव ग्रन्थों में प्रसिद्ध है ।

ये तीनों मल सभी जीवों को घेरे रहते हैं तथा इन्हीं तीनों मलों से रहित होने के कारण भगवान् शङ्कर निर्मल एवं शुद्ध हैं । यह निर्मलता अर्थात् इन तीनों मलों से दूर रहना शिवजी के लिए ही सम्भव है । क्योंकि वे सञ्चित, प्रारब्ध एवं क्रियमाण कर्मों के बन्धन से रहित सर्वज्ञ और परमात्मा हैं ।

वायुसंहिता में कहा गया है कि—तत्त्व को जाननेवाले

महात्मा लोग सम्पूर्ण कल्याण एवं गुणों से परिपूर्ण ईश्वर को शिव कहते हैं। दूसरा वचन है कि स्वभाव ही से वे तीनों मलों से रहित और अत्यन्त शुद्ध हैं। इसी कारण उनका नाम शिव है। वातूलशुद्ध में भी इस बात का प्रतिपादन किया गया है कि "वे शुद्ध हैं इसी से उनका नाम 'शिव' है"।

'शिव' शब्द का शास्त्रकारों ने यह भी अर्थ किया है कि— जिनमें सम्पूर्ण सचराचर जगत् शयन करे अर्थात् जिनमें अखिल विश्व लीन हो, वही शिव हैं। चित् शक्ति सम्पूर्ण संसार का कारण है और उस चित् शक्ति के एक मात्र आधार परम शिव हैं। अतः परम शिव सम्पूर्ण जगत् के आधार हैं। वेद में बताया गया है कि–'जो देव भिन्न-भिन्न योनियों में प्रवेश करते हैं, जिनमें सम्पूर्ण संसार लीन हो जाता है, उन वर देनेवाले और परम पूज्य ईशान देव (शिव) को प्राप्त होकर जीव परम शान्ति को प्राप्त होता है।

शिव शब्द का एक अर्थ और भी है–जिनमें सब प्रकार के विकार शान्त रहे अर्थात् जो विकार रहित हो उसका नाम शिव है। वेद में भगवान् शिव की स्तुति करते हुए कहा गया है कि वे क्रियारहित हैं, कला रहित हैं और शान्त हैं। इसी प्रकार वेद का एक दूसरा भी वचन है कि "भगवान् सदाशिव के तीन नेत्र हैं, उनका कण्ठ नील वर्ण का है और वे अत्यन्त शान्त हैं।"

वश धातु से जिसका अर्थ 'प्रेरणा करना' है अक्षरों के व्यत्यय

करने (उलटने) से भी शिव शब्द बनता है। कोश में कहा गया है कि "वर्णव्यत्यय करने से हिस् धातु से सिंह, वश् से शिव और पश्यक से कश्यप बनता है।" इस प्रकार शब्द बनाने से इसका अर्थ हुआ–'इच्छा का आश्रय'। यह इच्छा और कुछ नहीं, किन्तु शिवजी की चित् स्वरूपा परा शक्ति ही का भेद है। वेद में कहा गया है कि "शङ्कर भगवान् की परा शक्ति अनेक प्रकार की है।" वातूल शुद्ध में भी यही बात कही गई है कि "शिवजी के हजारवें अंश से पराशक्ति की उत्पत्ति है, परा शक्ति के हज़ारवें भाग से आदि शक्ति का प्रादुर्भाव होता है, आदि शक्ति के हजारवें हिस्से से इच्छा शक्ति उत्पन्न होती है, इच्छा शक्तिके हजारवें अंश से ज्ञानशक्ति की उत्पत्ति होती है और ज्ञानशक्ति के हजारवें भाग से क्रिया शक्ति का प्रादुर्भाव होता है।" शिवपुराण में लिखा है कि "परमेश्वर शिव की चित् स्वरूपा शक्ति सदा उनकी आज्ञा में रहती है और यही शक्ति इस बात का कारण है कि संपूर्ण संसार शिवजी में लीन रहता है।" उसी पुराण के एक दूसरे स्थान में लिखा है कि "इच्छा नामकी परा शक्ति भगवान् शिव की गोद में विराजमान रहती है, उसका नाम महा-लक्ष्मी है, वह युवती है और सबसे अधिक सुन्दर है।"

वश धातु से बनाए गए शिव शब्द का दूसरा अर्थ यह भी हो सकता है कि–'लोकहितकी कामना करनेवाले' महाभारत में इसका प्रमाण भी मिलता है। देव देव महादेव

जी का 'शिव' यह नाम इसी लिए पड़ा कि वे सदा सब कामों में सहायता देकर उनको पूरा करते और मनुष्यों के कल्याण की कामना करते हैं।

शिव का पर्यायवाचक शब्द 'मङ्गल' है। उस मङ्गल करनेवाले को शिव कहते हैं। वे संसार का कल्याण करते इसी लिए उनका नाम शिव है। वेद की आज्ञा है कि—*"संसार की अन्य सब बातें छोड़ कर केवल शिव का ध्यान करना चाहिए। क्यों कि वे मङ्गल करनेवाले हैं। महाभारत में प्रसङ्ग वश शिवजी स्वयं कहते हैं कि—"मेरी ÷ दृष्टि में देव-दानव सब बराबर हैं, मैं प्राणी मात्र का कल्याण करनेवाला हूँ, अतएव मुझे लोग शिव कहते हैं।

और एक श्लोक में यही सब बातें बताई गई हैं, उसका भावार्थ यह है—

"सम्पूर्ण चर एवं अचर विश्व इन्हीं में लीन रहता है। वे जीवों का कल्याण चाहते और करते हैं, शान्ति देने का काम उन्हीं का है, समस्त मङ्गल एवं गुणों की वे सीमा हैं, इच्छा शक्ति के आश्रय भी वे ही हैं और अत्यन्त निर्मल हैं, वे प्रकृति के साथ ही सदा रहते हैं। शिव शब्द से ही उनका पूरा महत्त्व और विभव प्रतीत होता है।"

---

* सर्वमन्यत्परित्यज्य शिवो ध्येयःशिवंकरः।

समा भवन्ति मे सर्वे दानवाश्चामराश्च ये।

÷ शिवोऽस्मि सर्वभूतानां शिवत्वं तेन मे सुराः॥

जितने प्रकार के अर्थ ऊपर बताए गए हैं, वे सब 'शि' शब्द से ही निकलते हैं ।

—:*:—

नाममहिमा ।

शिवनाममणिः कण्ठे यस्य तिष्ठति सर्वदा ।
स नीलकण्ठतामेति सत्यमेवोच्यते मया ॥ १ ॥

जिसके कण्ठ में शिवनाम का मणि नित्य स्थित रहता है, वह शिवके भावको प्राप्त होता है, मैं यह सत्य कहता हूँ ॥ १ ॥

संपूज्य शंकरं नित्यं शिवनामामृतं पिब ।
शिवनामामृतादन्यन्न भवत्यमृतं द्विज ॥ २ ॥

हे द्विज ! नित्य शिवको पूजकर शिवनामरूपी अमृत का पान करो, शिवनामरूपी अमृत से भिन्न अमृत नहीं है ॥ २ ॥

नृणां मरणकाले तु शिव इत्यक्षरद्वयम् ।
नायाति सहसा नूनं शंकरानुग्रहं विना ॥ ३ ॥

शिवके अनुग्रह के विना मनुष्यों के मरणकाल में "शिव" यह दो अक्षर एकाएक नहीं निकलते ॥ ३ ॥

शिवनामस्मृतिफलं वक्तुमेव न शक्यते ।
मादृशैरस्थिरस्वांतैः शंकरेण विना ध्रुवम् ॥ ४ ॥

शिवके विना मुझ सरीखे नश्वर शरीरवालों द्वारा शिवनामस्मृतिका फल नहीं कहा जा सकता ॥ ४ ॥

शिवनामकुठारेण संसारतरुरेकदा ।
सत्वरं यदि विच्छिन्नो न प्ररोहति सर्वथा ॥ ५ ॥

शिवनामरूपी कुल्हाड़े से एक साथ काटा हुआ संसार-(जन्म मरण) रूपी वृक्ष फिर कभी नहीं जमता है ॥ ५ ॥

संसारतरुमूलानि बहूनि विविधान्यपि ।
शिवनामकुठारेण निर्मूलानि भवंति हि ॥ ६ ॥

संसाररूपी वृक्ष के मूल अनेक प्रकार के और बहुत से हैं वे सब शिव नामरूपी कुल्हाड़े से निर्मूल हो जाते हैं ॥ ६ ॥

संसारतरुमूलानां पातकं मूलमुच्यते ।
तन्नाशस्तु भवत्येव शिवनामसकृज्जपात् ॥ ७ ॥

संसाररूपी वृक्षकी जड़ोंका मूल पाप कहा है, एक बार शिवनामके जपसे उसका नाश होजाता है ॥ ७ ॥

शिव इत्यस्ति यन्नाम तद्धि नामोत्तमोत्तमम् ।
तदेव परमं ब्रह्म तदेव हि वरानने ॥ ८ ॥

'शिव' यह नाम सब नामों से उत्तम नाम है । क्यों कि हे वरानने ! यह ही परम ब्रह्म है ॥ ८ ॥

शिवनामस्वरूपेण व्यक्तं ब्रह्माहमेव हि ।
शिवनामाहमेवेति विजानीहि यथार्थतः ॥ ९ ॥

शिवनाम स्वरूप से व्यक्त ब्रह्म मैं ही हूँ। इसे तुम
जानो ॥ ९ ॥

यदव्यक्तं परं ब्रह्म वेदांतप्रतिपादितम् ।
तदेवेदं विजानीहि शिव इत्यक्षरद्वयम् ॥ १० ॥

वेदान्त में जो अव्यक्त ब्रह्म का वर्णन है । वह 'शिव' ये
दो अक्षर ही है ॥ १० ॥

तारकं ब्रह्म परमं शिव इत्यक्षरद्वयम् ॥
नैतस्मादपरं किंचित्तारकं ब्रह्म सर्वथा ॥ ११ ॥

तारनेवाला परब्रह्म 'शिव' यह दो अक्षर हैं, इससे परे
तारक ब्रह्म नहीं है ॥ ११ ॥

यदा पातकयुक्तो वा युक्तो वा सर्वपातकैः ।
अंतकाले शिवेत्युक्त्वा न याति मम सादनम् ॥ १

गौतम से यमराज का वाक्य है—महा पापों से युक्त
थवा सबही पातकों से युक्त हो फिर भी अन्तकाल में 'शि
ऐसा कह कर मेरे स्थान को नहीं प्राप्त होता ॥ १ ॥

शिवशब्दमनुच्चार्य्य ब्राह्मणोऽपि न मुच्यते ।
शिवशब्दं समुच्चार्य्य चांडालोऽपि विमुच्यते ॥ २ ॥

शिव शब्द को विना उच्चारण किये ब्राह्मण भी मुक्त
होता और शिव शब्द का उच्चारण करके चाण्डाल भी मु
हो जाता है ॥ २ ॥

सर्वाणि शिवनामानि मोक्षदान्येव सर्वथा ।
तेष्वप्यत्युत्तमं नाम शिवेति ब्रह्मसंज्ञितम् ॥ ३ ॥

शिवके संपूर्ण (सब) नाम ही सब प्रकार की मुक्ति के देनेवाले हैं और उनमें भी शिव यह 'ब्रह्मसंज्ञक" नाम अति श्रेष्ठ कहा है ॥ ३ ॥

नित्यं कंठे धृतो येन शिवनाममहामणिः ॥
स नीलकंठो भूत्वांते नीलकंठे विलीयते ॥ ४ ॥

जो शिवनाम महामणिको नित्य अपने कण्ठ में धारण किये रहता है वह शिव स्वरूप होकर शिव में लय हो जाताहै ॥ ४ ॥

शिवेति नाम विमलं येनोच्चारितमादरात् ॥
तेन भूयो न संसारसागरः समवाप्यते ॥ १ ॥

जिसने आदर से निर्मल शिवनाम का उच्चारण किया उसको फिर संसाररूपी सागर नहीं प्राप्त होता ॥ १ ॥

ब्रह्महत्यासहस्राणि पुरा कृत्वापि पुक्कसः ।
शिवेति नाम विमलं श्रुत्वा मोक्षं गतः पुरा ॥ २ ॥

पहले एक पुक्कस (चाण्डाल) सहस्र ब्रह्महत्या करके भी इस नामको सुनकर मोक्षको प्राप्त हुआ था ॥ २ ॥

यद्द्व्यक्षरं नाम गिरेरितं नृणां सकृत्प्रसंगादघमाशु हंति तत् ।

श्रीमद्भागवत में देवी का वाक्य है—एक बार भी प्रसंग

से लिया हुआ 'शिव' का यह दो अक्षरवाला नाम शीघ्र पापोंका नाश करदेता है ॥ १ ॥

(कठब्राह्मणे जाबालब्राह्मणे च-)

अपि यश्चांडालः शिव इति वाचं वदेत्तेन सह संवदेत्तेन वदेत्तेनसहवसेत्तेनसहभुंजीतशिवनाम्नःपरमपावनत्वंदर्शया

कठ ब्राह्मण में लिखा है कि यदि कोई चाण्डाल भी शि का नाम ले तो उसके साथ बातचीत करना, उसके स रहना और उसके साथ भोजन तक कर लेना चाहिए। के कहने से शिवनाम की अतिशय पवित्रता दिखलायी है।

शिवनामामृताप्लुष्टरसनाः शिवपूजकाः ॥
शिवध्यानरता नित्यं संति धन्याः क्वचित्क्वचित् ॥

जिनकी जीभ शिव के नामरूपी अमृत में डूबी है ऐसे शि पूजक और नित्य शिवके ध्यान में मग्न रहनेवाले धन्य प्र कहीं ही कहीं मिलते हैं ॥ १ ॥

परलोकस्य पाथेयं मोक्षापायमनामयम् ।
पुण्यसंघौघनिलयं शिव इत्यक्षरद्वयम् ॥ २ ॥

'शिव' यह दो अक्षरों का नाम परलोक के रास्ते का कले मोक्ष का साधन, सब व्याधि दूर करनेवाला और पुण्यों समूह का साक्षात् निवासस्थान है ॥ २ ॥

शिवेति नाम विमलं शिवनाभोत्तमोत्तमम् ।
तद्येन स्मर्यते नित्यं तस्य दासो भवाम्यहं ॥ ३ ॥

'शिव' यह नाम पवित्र और संसार की उत्तम से उत्तम वस्तुओं में भी उत्तम है। उस (नाम) का जो कोई स्मरण करता है, मैं उसका सेवक हो जाता हूँ ॥ ३ ॥

अनेकजन्मभिर्नित्यं पुण्यं बहु कृतं यदि ।
तदा शिवेति शब्दोऽस्य सादरं निःसरिष्यति ॥४॥

जिसने कि अनेक जन्मों में बहुत से पुण्य किये हैं, उसी के मुख से आदर पूर्वक 'शिव' यह नाम निकलता है ॥ ४ ॥

शिवेति यः परो मंत्रः स परं ब्रह्म उच्यते ।
परं ब्रह्मस्वरूपं तज्ज्ञातुमेव न शक्यते ॥५॥

'शिव' यह जो श्रेष्ठ मन्त्र है सो परब्रह्म स्वरूप है। और उस परब्रह्म को कोई जान नहीं सकता ॥ ५ ॥

तत्त्व तु शिवमन्त्रस्य येन ज्ञातं भविष्यति ।
तेनतीर्ण इति ज्ञेयो घोरः संसारसागरः ॥ ६ ॥

भाग्यवश जिसने शिवमंत्र का तत्त्व जान लिया, उसे घोर संसारसागर से पार उतरा हुआ समझना चाहिए ॥ ६ ॥

ततस्तेनैव मंत्रेण पूजनीयः सदा शिवः ।
पापानि हरो हरति संसारात्तारयेत्परम् ॥ ८ ॥

अतएव भक्तों को उचित है कि 'शिव' इस नाम मंत्र से शिवजी का पूजन करें। क्योंकि शिवजी का एक नाम ' भी है। जिसका मतलब यह हैं कि वे अपने भक्तों के पाप दूर कर दिया करते हैं ॥ ८ ॥

अपवित्रः पवित्रो वा सर्वावस्थां गतोपि वा ।
यः स्मरेच्छिवमीशानं स बाह्याभ्यन्तरः शुचिः ॥ १

जो मनुष्य पवित्र अथवा अपवित्र हो, किन्तु वह 'शिव' यह नाम ले लेता है, तो बाहर भीतर सब तरह शुद्ध हो जाता है ॥ १ ॥

शिवेति शब्दमुच्चार्य प्राणांस्त्यजति यो नरः ।
कोटिजन्मार्जितात्पापान्मुक्तो मुक्तिं प्रयाति सः ॥२

जो मनुष्य 'शिव' इस शब्द का उच्चारण करता हु प्राण त्यागता है तो वह अपने करोड़ों जन्म के पाप नष्ट क मुक्त हो जाता और मुक्तिपद को प्राप्त होता हैं ॥ २ ॥

शिवः कल्याणवचनं कल्याणं मुक्तिवाचकम् ।
यतस्तत्प्रभवेत्तेन स शिवः परिकीर्तितः ॥ ३ ॥

'शिव' इस शब्द का मतलब है कल्याण। और कल्य का मतलब है मुक्ति। क्योंकि 'शिव' इस नाम से मुक्ति उत्पत्ति होती है इसीलिए शिवजी 'शिव' कहे गये हैं ॥ ३ ॥

विच्छेदे धनबंधूनां निमग्नः शोकसागरे ।
शिवेति शब्दमुच्चार्य लभेत्सर्वः शिवं नरः ॥ ४ ॥

यदि कोई मनुष्य धन तथा अपने भाई बन्धु से अलग होकर महान् शोकसागर में निमग्न हो जाय, किन्तु वह यदि एक बार 'शिव' इस शब्द का उच्चारण करले तो उसे सब प्रकार के कल्याण (धन-धान्य एवं मोक्ष आदि) प्राप्त हो जाते हैं ॥४॥

पापघ्ने वर्तते शिश्च वश्च मुक्तिप्रदे तथा ।
पापघ्नो मोक्षदो नृणां शिवस्तेन प्रकीर्तितः ॥ ५ ॥

'शिव' इस शब्द में 'शि' यह अक्षर पापों को नष्ट करनेवाला है और 'व' मुक्ति प्रदान करता है। सो 'शिव' यह शब्द पापों को नाश करने और मुक्ति देने ही के कारण शिव कहा गया है ॥ ५ ॥

शिवेति च शिवं नाम यस्य वाचि प्रवर्तते ।
कोटिजन्मार्जितं पापं तस्य नश्यति निश्चितम् ॥६॥

'शिव' शब्द अथवा 'शिव' यह नाम जिसकी वाणी में रहता है, उसके करोड़ों जन्म के पाप नष्ट हो जाते हैं। यह निश्चित है ॥ ६ ॥

शिवेति द्व्यक्षरं नाम त्रायते महतो भयात् ।
तस्माच्छिवश्चिंत्यतां च स्मर्यतांच द्विजोत्तमैः ॥१॥

(केदारखण्डे)

'शिव' यह दो अक्षर का नाम बड़े बड़े भय से १ मंत्र है। इस लिए श्रेष्ठ द्विजातियों को चाहिए शिव का ह नाम और चिन्तन करें ॥ १ ॥ कों के

किं नु वै बहुनोक्तेन शिव इत्यक्षरद्वयं ।
उच्चारयंते नित्यं ये ते रुद्रा नात्र संशयः ॥ २

'शिव' इस नाम के विषय में विशेष कहने की आ १ ता नहीं है। जो इस का उच्चारण करते रहते हैं, वे शिव ही हो जाते हैं ॥ २ ॥ वह

शिवेति द्व्यक्षरं नाम व्याहरिष्यंति ये जनाः ।
तेषां स्वर्गश्च मोक्षश्च भविष्यति च नान्यथा ॥३॥

जो मनुष्य शिव इस दो अक्षर के नाम का उच्चारण गे, उन्हें स्वर्ग तथा मोक्ष सब कुछ मिल जायगा ॥ ३ ॥

शिवेति द्व्यक्षरं नाम यैरुदीरितमुच्चकैः ।
ते धन्यास्ते महात्मानः कृतकृत्यास्त एव च ॥ ४

जो लोग ऊँचे स्वर से शिव इस दो अक्षरवाले नाम उच्चारण करेंगे वे लोग धन्य, महात्मा एवं कृतकृत्य जाते हैं ॥ ४ ॥

अहो यदेषा शिवनामवाणी प्रमादतो वाप्यसती जगाद
तेनैव भूयः सुकृतेन शंभो विल्वांकुराराधनपुण्यमाप ॥५

(ब्रह्मोत्तरखण्डे)

हो ! किसी मनुष्य ने शिव इस नाम को प्रमाद से
लिया था सो हे शंभो ! उसी सुकृत से वह दूसरे जन्म में
शिवाराधन के पुण्य को प्राप्त हुआ ॥ ५ ॥

यदि शिवनाम पवित्रं वाक् निरगादघहारिणी ।
शिवनामश्रवणं च मदीयमपि पातकम् ॥ १ ॥

भगवान् कहते हैं कि जिस मनुष्य के मुख से शिव नाम
पुनीत वाणी निकल आती है, वह धन्य है और शिवजी
नाम सुन कर ही मैं भी अपने पाप दूर करता हूँ ॥ १ ॥

महापातकविच्छित्यै शिव इत्यक्षरद्वयम् ।
अलं नमस्क्रियायुक्तो मुक्तये कल्पितो मनुः ॥ २ ॥

(काशीखण्डे)

'शिव' यह दो अक्षरों का नाम बड़े-बड़े पापों को नष्ट
करनेवाला है और मुक्ति पाने के लिए नमस्कार पूर्वक
"ॐ नमः शिवाय" इस मंत्र का जप करना पर्याप्त है ॥ २ ॥

हर हर इति शब्दमादितो वै मुहुरभिधाय मुनींद्रवृन्दवंद्यः ।
अपठदखिलमेघघोषतुल्यं सकलहिताय नमः शिवाय मंत्रम् ॥ १ ॥

(सनत्कुमारसंहिता)

एक ऋषि तो पहिले "हर हर" इस नाम को बार-बार
कहकर मेघ के तुल्य गंभीर वाणी से सबके कल्याण के लिए
"ॐ नमः शिवाय" इस मंत्र का जप करते थे ॥ १ ॥

यत्पादपद्मस्मरणाच्छिवनामजपादपि ।
नूनं कर्म भवेत्पूर्णं तं वंदे सांबमीश्वरम् ॥ १ ॥
(कैलाससंहिता)

जिसके चरण कमल का स्मरण करने से, और जि
शिवनाम का स्मरण करने से सब कर्म समाप्त हो जाते है
उन पार्वती समेत शिवजी को मैं प्रणाम करता हूँ ॥ १ ॥

दृषद्विचित्रतल्पयोर्भुजंगमौक्तिकस्रजो-
र्गरिष्ठरत्नलोष्ठयोः सुहृद्विपक्षपक्षयोः ।
तृणारविन्दचक्षुषोः प्रजामहीमहेन्द्रयोः
समप्रवृत्तिकः कदा सदा शिवं भजाम्यहम् ॥ १ ॥

वह कौन सा शुभ समय होगा कि जिस समय मैं पत्थ
और पुष्पों की शय्या में, सर्प और मोतियों की माल
में, बहुमूल्य रत्न और मृत्तिका के ढेले में, शत्रु और मि
में, तृण और नीलकमल के समान नेत्रवाली स्त्री में त
प्रजा और चक्रवर्ती राजा में एक सी दृष्टि करके सदाशिव
भजन करूँगा ॥ १ ॥

कदा निलिंपनिर्झरीनिकुञ्जकोटरे वसन
विमुक्तदुर्मतिः सदा शिरस्थमंजलिं वहन् ।
विलोललोललोचनो ललामभाललग्नकः
शिवेति मंत्रमुच्चरन्सदा सुखी भवाम्यहम् ॥ २ ॥
(शिवतांडव)

वह कौन सा कल्याणकारक समय होगा कि जिस समय मैं संपूर्ण दुर्वासनाओं को त्याग कर गङ्गातट के कुंज में निवास करके अंजली बाँधता हुआ चंचल नेत्रवाली स्त्रियों में रत्नरूप जगज्जननी माँ पार्वती जी को भी प्रारब्ध वश प्राप्त हुए (अर्थात् औरों को परम दुर्लभ) शिव २ मंत्र का उच्चारण करता हुआ परम आनंद को प्राप्त होऊँगा ॥२॥

अहौ वा हारे वा बलवति रिपौ वा सुहृदि वा ।
मणौ वा लोष्टे वा कुसुमशयने वा दृषदि वा ।
तृणे वा स्त्रैणे वा मम समदृशो यान्तु दिवसाः
सदा पुण्येऽरण्ये शिवशिवशिवेति प्रजपतः ॥१॥

(भर्तृहरि)

भयानक सर्प हो या हार हो, बलवान् शत्रु हो या मित्र हो, मणि हो या मिट्टी का ढेला, फूल की सेज हो या पत्थर, तृण हो या स्त्रैण इन सबपर मेरी समान दृष्टि रहे और किसी पवित्र वन में 'शिव शिव' ऐसा जप करते २ मेरे दिन बीतें॥१॥

* श्रीगणेशाय नमः *

कीर्तनामृतम् ।

यस्यैव देवदेवस्य नामाऽपि विवशो गृणन् ।
स्वकीयकर्मबंधोयगुणान्विधुनुतेंऽजसा ॥ १ ॥

जिस देवका विवश होकर (विगतो वशः यस्य अस्य) अर्थात् भूल से भी नाम लेने से अपने किये कर्मबन्धन के गुण सर्वथा नष्ट हो जाते हैं ॥ १ ॥

कीर्तयेत्कीर्त्यनाम्ना च स नूनं मोक्षमाप्नुयात् ॥२॥

(ना. खं. अ. १०६)

जो कीर्तन करने योग्य नाम से (भगवान् का नाम प्रेम-पूर्वक) कीर्तन करता है वह (प्राणी) नित्य मोक्ष पाता है।

अन्तः शुचिः शिवे भक्तो विस्रब्धः कीर्तयेद्यदि ।
प्रबलैः कर्मभिः पूर्वैः फलं चेत् प्रतिबध्यते ॥१॥

कोई प्राणी पवित्र हो शिव में भक्ति कर यदि नामकीर्तन करे तो पूर्व जन्म के प्रबल (अनेक जन्मों के संचित) कर्मों के फल नाना योनियों में जन्मना व मरना भी नष्ट हो जाते हैं ॥१॥

पुनः पुनः समभ्यस्येत्तस्य नास्तीह दुर्ल्लभम् ॥
(वा० सं० अ० ५)

इस तरह बारम्बार अभ्यास (साधन) करनेवालों को कुछ भी दुर्लभ नहीं रहता है ॥

शिवभक्तेन सम्भाषा शिवसङ्कीर्तनं तथा
शिवलिङ्गार्चनं लोके वपुर्ग्रहणोदयम् ॥१॥

शिवभक्तों से सम्भाषण (भगवद्वार्ता करनी) या शिवजीका "कीर्तन" करना तथा शिवलिंगका पूजन संसार में शरीर ग्रहण करने का ऐश्वर्य (फल) है ॥ १ ॥

ब्राह्मे मुहूर्त्ते चोत्थाय शुचिर्भूत्वा समाहितः ।
शिवेति कीर्तयन् सर्वैः पातकैस्तु विमुच्यते ॥२॥ (सूतसंहिता)

जो प्राणी ब्राह्ममुहूर्त में उठकर और पवित्र होकर 'शिव' इस नाम का कीर्तन करता है, वह सब पातकों से छूट जाता है ॥२॥

यन्नामाश्रुतमनुकीर्तयेत्कस्मादार्त्तो वा यदि पतितः प्रलंभनाद्वा ।
हंत्यंहः सपदि नृणामशेषमन्यं कं शेषाद्भगवत आश्रयेन्मुमुक्षुः ॥१॥
(अ० २८ स्क० ८ दे० भा० ।)

आर्त या पतित अवस्था में अथवा उपहास में भी एकबार उसका नामकीर्तन करने से मनुष्य के सम्पूर्ण पाप उसी समय दूर हो जाते हैं, मोक्षाभिलाषी पुरुषगण इन अनन्त भगवान् के अतिरिक्त और किसका आश्रय ग्रहण करें ? याने ईश्वर का ही आश्रय ग्रहण करें ॥ १ ॥

अथ शिवरहस्ये सप्तमांशे शिवनाममाहात्म्यश्लोकसंग्रहः। यथा प्रथमेऽध्याये शिववाक्यं षण्मुखं प्रति—

या गतिर्योगयुक्तानां वाराणस्यां तनुत्यजाम् ।
सा गतिश्च भवेत्तेषां मन्नामश्रवानुकीर्तनात् ॥ १ ॥

शिवरहस्य के सप्तमांशस्थ शिव-नाम-माहात्म्य के श्लोकसंग्रह के पहले अध्याय में स्वामिकार्तिक से शिवका वचन है—योगियों की तथा काशी में शरीर छोड़नेवालोंकी जो गति होती है वही गति शिवनामके (प्रेमपूर्वक) कीर्तन करनेवाले को प्राप्त होती है ॥ १ ॥

ये मुक्तिदायकमहेशपिनाकपाणे
शंभो गिरीश हर शंकर चंद्रमौले ।
विश्वेश्वरांधकरिपो पुरसूदनेति
मामर्चयंत्यनुवदंति त एव धन्याः ॥२॥

हे मुक्तिदायक ! हे महेश ! हे पिनाकपाणे ! हे शम्भो ! हे गिरीश ! हे हर ! हे शङ्कर ! हे चन्द्रमौले ! हे विश्वेश्वर ! हे अन्धकरिपो ! हे पुरसूदन ! ऐसा जो कहते तथा मुझे पूजते हैं वे ही धन्य हैं ॥ २ ॥

ये देवदेव जगदीश्वर पंचवक्त्र,
सोमाग्निभानुनयनानघ शूलपाणे ।

गौरीमनोरमण मारनिषूदनेति
मामर्चयन्त्यनुवदंति त एव धन्याः ॥३॥

हे देवों के देव! हे जगदीश्वर ! हे पञ्चवक्त्र ! हे सोमाग्निभानुनयन ! हे अनघ ! हे शूलपाणे ! हे गौरीमनोरमण ! हे मारनिषूदन ! जो ऐसा कहते हैं तथा मुझे पूजते हैं वे ही धन्य हैं ॥ ३ ॥

ये शर्व भालनयनामल विश्वमूर्ते
श्रीनीलकंठ वरदोत्तम विश्वबाहो ।
भर्ग त्रिलोचन भगाक्ष हराजरेति
मामर्चयंत्यनुवदंति त एव धन्याः ॥४॥

हे शर्व ! हे भालनयन ! हे अमल ! हे विश्वमूर्ते ! हे श्रीनीलकण्ठ ! हे वरदोत्तम ! हे विश्वबाहो ! हे भर्ग ! हे त्रिलोचन ! हे भगाक्ष ! हे हर ! हे अजर ! ऐसा कहकर जो मुझको पूजते हैं, वे ही धन्य हैं ॥ ४ ॥

ये विष्णुवल्लभ सदाशिव कालकाल
कालाग्निरुद्र करुणाकर दीनबंधो ।
कर्पूरगौर परमेश महेश्वरेति
मामर्चयंत्यनुवदंति त एव धन्याः॥५॥

हे विष्णुवल्लभ ! हे सदाशिव ! हे कालकाल ! हे कालाग्निरुद्र ! हे दीनबंधो ! हे कर्पूर के समान गौर ! हे परमेश !

हे महेश्वर ! जो ऐसा मुझको कहते तथा पूजते हैं वे ही धन्य हैं ॥ ५ ॥

ये वामदेव भवभंजक भूतिभूष,
भूतेश खण्डपरशो प्रमथाधिनाथ ।
विश्वाधिप त्रिदशवन्द्य सुरेश्वरेति
मामर्चयंत्यनुवदंति त एव धन्याः ॥६॥

हे वामदेव ! हे भवभंजक ! हे भूतिभूष ! हे भूतेश ! हे खंडपरशो ! हे प्रमथाधिनाथ ! हे विश्वाधिप ! हे त्रिदशवंद्य ! हे सुरेश्वर ! जो ऐसा मुझको कहते हैं तथा पूजते हैं, वे ही धन्य हैं ॥ ६ ॥

ये भक्तवत्सल जटापटलावलंवि,
बालेंदुखंडरुचिमंडलमंडितांग ।
रत्नस्फुरद्भुजगराजविभूषणेति,
मामर्चयंत्यनुवदंति त एव धन्याः ॥७॥

हे भक्तवत्सल ! हे जटाकलापके धारण करनेवाले ! हे बालेन्दुखंड के रुचिमंडल से भूषित अंगवाले ! हे रत्नस्फुरद्भुजगराजविभूषण ! ऐसा जो कहते हैं तथा मुझे पूजते हैं, वे ही धन्य हैं ॥ ७ ॥

ये भीमषण्मुखगुरो मृगशावहस्त
शार्दूलचर्मवसनाव्यय सत्यसंध ।

शैलाधिराजनिलय त्रिपुरांतकेति
मामर्चयंत्यनुवदन्ति त एव धन्याः ॥८॥

हे भीम ! हे षण्मुखगुरो ! हे मृगशावहस्त ! हे शार्दूलचर्मवसन ! हे अव्यय ! हे सत्यसंध ! हे शैलाधिराजनिलय ! हे त्रिपुरान्तक ! ऐसा जो कहते हैं और मुझको पूजते हैं वे ही धन्य हैं ॥ ८ ॥

ये भीमरुद्रवृषभध्वज वीरभद्र
भद्रावतार भगवन्भवभव्यरूप ।
निःसंगनिर्मलनिरंजननिर्गुणेति
मामर्चयन्त्यनुवदंति त एव धन्याः ॥ ९ ॥

हे भीम ! हे रुद्र ! हे वृषभध्वज ! वीरभद्र ! हे भद्रावतार ! हे भगवन् ! हे भव ! हे भव्यरूप ! हे निःसंग ! हे निर्मल ! हे निरंजन ! हे निर्गुण ! इस प्रकार जो मुझको कहते हैं तथा पूजते हैं वे ही धन्य हैं ॥ ९ ॥

ये कालकूटविषभूरिभयार्तदेव
संरक्षकाद्यविषमाक्षसमस्तसाक्षिन् ।
सूक्ष्मातिसूक्ष्मशिवदक्ष मखांतकेति
मामर्चयंत्यनुवदन्ति त एव धन्याः ॥ १० ॥

हे कालकूटविषभूरिभयार्तदेवसंरक्षक ! हे आद्य ! हे विषमाक्ष ! हे समस्तसाक्षिन् ! हे सूक्ष्मातिसूक्ष्म ! हे शिव ! हे

दक्षेश्वर ! जोध्वंसकर्ता ! जो लोग ऐसा कहते हैं त
मुझको पूजते हैं वे ही धन्य हैं ॥ १० ॥

ये सोम सांब शिपिविष्ट जगन्निवास
कैलासवास मुनिहृत्कमलाधिवास ।
सोमावतंस शितिकंठ शिवाप्रियेति
मामर्चयंत्यनुवदंति त एव धन्याः ॥ ११

हे सोम ! हे साम्ब ! हे शिपिविष्ट ! हे जगन्निवास !
कैलासवासी ! हे मुनियोंके हृदय कमलमें निवास करनेवाले
हे सोमावतंस ! हे शितिकंठ ! हे शिवाप्रिय ! जो लोग ऐसा
कहते हैं तथा मुझे नित्य पूजते हैं वे ही धन्य हैं ॥ ११ ॥

ये यज्ञ शाश्वत वृषासन धर्मरूप
यज्ञादिकर्मफलदायक यज्ञमूर्ते ।
सृष्टिस्थितिप्रलयकारण सात्त्विकेति
मामर्चयंत्यनुवदंति त एव धन्याः ॥ १२ ॥

हे यज्ञ ! हे शाश्वत ! हे वृषासन ! हे धर्मरूप ! हे यज्ञादि
कर्मोंके फल देनेवाले ! हे यज्ञमूर्ते ! हे सृष्टि, स्थिति, प्रलय
करनेवाले ! हे सात्त्विक ! जो मुझे ऐसा कहते तथा पूजते
हैं वे ही धन्य हैं ॥ १२ ॥

ये नीललोहित दिगंबर कृत्तिवासः
श्रीकंठ शांत निरुपाधिक निर्विकार ।

मृत्युञ्जयाव्यय निधीशगणेश्वरेति
मामर्चयंत्यनुवदंति त एव धन्याः ॥ १३ ॥

हे नीललोहित ! हे दिगंबर ! हे कृत्तिवास ! हे श्रीकंठ ! हे शान्त ! हे निरुपाधिक ! हे निर्विकार ! हे मृत्युञ्जय ! हे अव्यय ! हे निधीश ! हे गणेश्वर ! जो लोग ऐसा कहते तथा मुझे पूजते हैं, वे ही धन्य है ॥ १३ ॥

मन्नामामृतपायिनः स्वजननीस्तन्यं पुनः सर्वथा
नाकांक्षंति न चाप्नुवंति सततं मत्पादपद्मार्चकः ।
मल्लिंगार्चनतत्परा मम हिता मल्लोक एवानिशं
संतिष्ठन्ति निरस्तदुःखनिकरा मद्भक्तवर्या मुदा ॥१४॥

मेरे नामरूपो अमृतके पीनेवाले ! नित्य मेरे चरणकमलों के पूजनेवाले, मेरे ज्योतिर्लिङ्गके पूजनेवाले, मेरा हित करनेवाले, मेरे भक्तलोग बारंवार माताके दूधकी इच्छा नहीं करते तथा दुःखोंसे रहित हो, नित्य मेरे ही लोकमें निवास करते हैं ॥१४॥

महेशनामामृतदिव्यधारा-
परिप्लुतांगोऽध्वनि मध्यगोऽपि ।
न शोकमाप्नोति नरो यतोऽहं
संरक्षितो वह्निगतः शिवेन ॥१५॥

महेशनामरूपी अमृत की धारासे भीगे अंगवाला और ध्वनि (शब्द) के मध्यमें प्राप्त हुआ भी मनुष्य शोकको नहीं

प्राप्त होता है। कारण कि अग्निमें प्राप्त हुये मुझे शिवजी बचाया था ॥ १५ ॥

शंभो शंभो महेशेति ये वदंत्यनिशं मुदा ।
न तेषां गर्भभीर्भूयस्तदन्येषां तु गर्भभीः ॥१६॥

शिवरहस्य के वीसवें अध्यायमें ब्रह्मासे विष्णुका वाक्य है- हे शंभो ! हे शंभो ! हे महेश ! इस प्रकार जो नित्य आनन्द से कहते हैं, उनको फिर गर्भका भय नहीं होता औरों गर्भकी भीति होती है ॥ १६ ॥

शिवेति परमेशेति ये वदंत्यनिशं मुदा ।
न तेषां गर्भभीर्भूयस्तदन्येषां तु गर्भभीः ॥१७॥

हे शिव ! हे परमेश ! इस प्रकार नित्य जो आनंदसे कहते हैं, उनको फिर गर्भका भय नहीं होता औरों को गर्भकी भीति होती है ॥ १७ ॥

मृत्युंजयामरेशेति ये वदंत्यनिशं मुदा । न तेषां० ॥१८॥

हे मृत्युञ्जय ! हे अमरेश ! ऐसा जो हर्षसे नित्य कहते हैं उनको गर्भका भय नहीं होता है ॥ १८ ॥

महादेव महेशेति ये वदंत्यनिशं मुदा । न तेषां० ॥१९॥

हे महादेव ! हे महेश ! इस प्रकार जो आनन्दसे कहते हैं, उनको गर्भका भय नहीं रहता ॥ १९ ॥

शंकरेति मुदा यस्तु वदिष्यत्यनुवासरम् ।
स तु धन्यतरो ज्ञेयः सत्यं सत्यं मयोच्यते ॥२०॥

जो 'हे शंकर !' इस प्रकार आनन्द से नित्य कहता है, वह धन्यवाद के योग्य है। यह मैं सत्य सत्य कहता हूँ ॥२०॥

संसारसागरं तर्तुं तरिर्नामैव शांकरम् ।
तदन्यत्तु न संसारघोरसागरतारकम् ॥२१॥

शंकर यह नाम ही संसारसागरसे तरनेकी नौका है। उससे भिन्न संसाररूपी घोर सागर से तारनेवाला कोई नहीं है ॥ २१ ॥

शांकरं नाम विमलं मिष्टान्मिष्टतरं विधे ।
तन्नाम मुक्तिदं भव्यं संसारभयनाशकम् ॥२२॥

हे विधे ! यह निर्मल शिवका नाम मधुर से भी मधुर तथा मुक्तिका देनेवाला और संसारके भयका नाश करनेवाला है ॥ २२ ॥

प्रसंगेनापि मन्नाम सोत्साहं योऽनुशीलयेत् ।
स पापमात्ररहितो भविष्यत्येव सर्वथा ॥२३॥

भा० टी०—फिर उसी अध्याय में यमराजसे देवाधिदेव भगवान् शिवका वाक्य है—जो किसी प्रसंगसे भी मेरा नाम उत्साह पूर्वक लेता है, वह सब प्रकार के पापमात्र से रहित हो जाता है ॥२३॥

यत मन्नामदावाग्निः पापारण्यदवानलः ।
तस्मिन्नुच्चरिते नाम्नि नश्यत्यघकुलं क्षणात् ॥२४॥

हे यमराज ! मेरा नामरूपी दवाग्नि पापरूपी वनको भस्म

करनेवाला है । उस नामके उच्चारण करने पर पापों
समूह एक क्षण में नष्ट हो जाता है ॥ २४ ॥

क्व पातकानि तिष्ठंति स्मृते मन्नाम्नि सादरम् ।
तद्यतः पापसंघानां महाशनिरिति श्रुतम् ॥२५॥

आदर से मेरे नामके स्मरण करनेपर पाप कहां ठह
सकते हैं ? कारण कि वह पापसमूहोंका वज्र है य
प्रसिद्ध है ॥ २५ ॥

यथा कालानलज्वालसंदग्धा गिरिकोटयः ।
तथा मन्नामसंदग्धा महापातककोटयः ॥२६॥

जैसे कालाग्निकी लपटें कोटि पर्वतोंको भस्म कर देती
उसी प्रकार मेरा नाम कोटि पापोंको भस्म करता है ॥२६॥

चंडालमपि मन्नामस्मरणासक्तचेतसम् ।
संसारसागराद्घोरात्तारयामि न संशयः ॥२७॥

मेरे नाम का स्मरण करनेवाले चाण्डालको भी मैं संसा
रसागरसे उद्धार करके तार देता हूँ । इसमें कुछ संशय
नहीं है ॥ २७ ॥

अंतकाले स्मृतं येन मन्नामाघौघनाशकम् ।
तेन तीर्णस्तूर्णमेव घोरः संसारसागरः ॥२८॥

जिसने अन्तकालमें पापोंके नाश करनेवाले मेरे नामका
स्मरण किया, उसने मानों शीघ्र ही संसारसागर को
पार कर लिया ॥२८ ॥

मन्नामस्मरणं नाम ममैव स्मरणोपमम् ।
ततो मयि स्मृते कुत्र पातकानामवस्थितिः ॥२९॥

हे यमराज ! मेरे नामका स्मरण करना मानों मेरा ही स्मरण है। मेरे स्मरण करनेपर पापोंकी स्थिति कहां हो सकती है ॥ २९ ॥

तावदेव हि पापानि वसंति पुरुषे यम ।
स्मृतं न यावन्मन्नाम महापातकनाशकम् ॥३०॥

हे यमराज ! मनुष्यमें तभी तक पाप रहते हैं जब तक पापनाशक मेरा नाम स्मरण नहीं करता ॥ ३० ॥

तावदेव न नश्यंति महापातककोटयः ।
यावदेव न मन्नामस्मरणप्रवणं मनः ॥३१॥

तभीतक कोटि महापाप नहीं नष्ट होते, जब तक मनमें मेरे नामका स्मरण नहीं होता ॥ ३१ ॥

अयं स्मृत्वा सोमनाम महापातकनाशकम् ।
ततस्तनुं जहौ तस्मादयं मुक्तो न संशयः ॥३२॥

इस ब्राह्मणने महापापोंके नाशक मेरे "सोम" इस नामका स्मरण करके अपने शरीरको छोड़ा है इसलिये यह मुक्त है । इस में संशय नहीं है ॥ ३२ ॥

हितमन्यद्वदिष्यामि यमाहं तव सादरम् ।
शांकरानन्वहं भक्त्या पूजयस्व प्रयत्नतः ॥३३॥

हे यमराज ! मैं तुमसे आदर सहित यह कहता हूँ
तुम शिवके भक्तोंको यत्नसे पूजो (सत्कार करो) ॥ ३३ ॥

ये चंद्रशेखर महेश कृपानिधान
श्रीविश्वनाथ करुणाकर शंकरेति ।
नित्यं वदंति सितकेवलभस्मभालास्ते
शांकरास्तव यमान्वहमर्चनीयाः ॥३४॥

जो लोग हे चन्द्रशेखर ! हे महेश ! हे कृपानिधान !
श्रीविश्वनाथ ! हे करुणाकर ! हे शङ्कर ! ऐसा नित्य कहते हैं
तथा जो श्वेतभस्म से युक्त माथेवाले शिवके भक्त हैं । हे यम
राज ! वे तुम्हारे नित्य पूजने योग्य हैं ॥ ३४ ॥

ये भीम भर्गभगवन्भवभव्यरूप
भालेक्षणानुगणकोटिनिभेश्वरेति । नित्यं वदंति० ॥३५॥

जो लोग हे भीम ! हे भर्ग ! हे भगवन् ! हे भव ! हे भव्य
रूप ! हे भालेक्षण ! हे अनुगण ! हे कोटिनिभ ! हे ईश्वर
ऐसा नित्य कहते हैं, वे तुम्हारे नित्य पूजने योग्य हैं ॥ ३५ ॥

ये विश्ववंद्य विबुधोत्तम विश्वबंधो
कालाग्निसंन्निभनृसिंहनिपातनेति । नित्यं वदंति० ॥३६॥

हे विश्ववन्द्य ! हे विबुधोत्तम ! हे विश्वबन्धो ! हे कालाग्निसन्निभ ! हे नृसिंहनिपातन ! ऐसा जो नित्य कहते हैं,
नित्य तुम्हारे पूजने योग्य हैं ॥ ३६ ॥

ये कालकाल पुरसूदन पुण्यमूर्ते
विश्वंभराखिलगुरो भगवञ्छिवेति । नित्यं वदंति० ॥३७॥

जो हे कालकाल ! पुरसूदन ! हे पुण्यमूर्ते ! हे विश्वंभर ! हे अखिलगुरो ! हे भगवन् ! हे शिव ! ऐसा नित्य कहते हैं, वे तुम्हारे पूजने योग्य हैं ॥ ३७ ॥

ये दीनवत्सल परात्पर देवदेव
देवोत्तमोत्तम सदाशिव सर्वगेति । नित्यं वदंति० ॥३८॥

हे दीनवत्सल ! हे परात्पर देव ! हे देवोंके देव ! हे उत्तमोत्तम देव ! हे सदाशिव ! हे सर्वगन्ता ! ऐसा जो नित्य कहते हैं, हे यम ! वे तुमसे नित्य पूजने योग्य हैं ॥ ३८ ॥

ये सर्गरक्षणविनाशविधानहेतो
गौरीमनोरमण सर्वसुराधिपेति । नित्यं वदंति० ॥३९॥

हे सर्गरक्षणविनाशविधान के हेतु ! हे गौरीमनोरमण ! हे सर्वसुराधिप ! जो ऐसे नित्य जपते हैं, हे यमराज ! वे तुम्हारे सदा पूजने योग्य हैं ॥ ३९ ॥

ये नित्य निष्कल निरंजन भासमान
गोवागतीतनिगमांतविभूषणेति । नित्यं वदंति० ॥४०॥

हे नित्य ! हे निष्कल ! हे निरंजन ! हे भासमान ! हे गोवागतीत ! हे निगमान्तविभूषण ! जो ऐसा नित्य कहते हैं, वे तुम्हारे पूजने योग्य हैं ॥ ४० ॥

ये नीललोहित निरीश्वर निष्प्रपंच
पंचाननाव्यय निरंतर निर्गुणेति । नित्यं वदंति० ॥४१॥

हे नीललोहित ! हे निरीश्वर ! हे निष्प्रपंच ! हे पंचानन! हे अव्यय ! हे निरन्तर ! हे निर्गुण ! जो इस प्रकार सदा उच्चारण करते हैं, हे यम! वे तुमसे सत्कार पाने योग्य हैं ॥४१॥

ये विष्णुमुख्यसुरवर्ग निसर्गसेव्य
स्वर्गापवर्गफलवर्गविधायकेति । नित्यं वदंति० ॥४२॥

हे विष्णु इत्यादि सुरसमूहोंसे स्वभाव ही से सेवा किये जाने योग्य ! हे स्वर्गापवर्गफलवर्गविधायक ! जो ऐसे नित्य कहते हैं, तुम्हें उनको पूजना चाहियें ॥ ४२ ॥

ये सोममंगलनिधान निधानहेतो
कारुण्यसागर शरण्य गणेश्वरेति । नित्यं वदंति० ॥४३॥

हे सोम ! हे मंगलनिधान ! हे निधानहेतो ! हे करुणाके सागर ! हे शरण्य ! हे गणेश्वर ! जो नित्य ऐसा कहते हैं, उन्हें सदा पूजना चाहिये ॥ ४३ ॥

यदेतदुक्तमधुना यम आदरपूर्वकम् ।
तदन्वहं स्मर प्रीत्या सावधानेन यत्नतः ॥४४॥

हे यमराज ! जो यह आदरसे मैंने कहा है, उसका यत्नपूर्वक सावधान होकर नित्य प्रीतिसे स्मरण करना चाहिए॥४४॥

भृत्यो हिततरा एव शांकराः सर्वदा मम ।
अतस्ते सर्वदा पूज्यास्तव यत्नेन सादरम् ॥४५॥

हे यम ! शिवभक्त मुझे नित्य प्रिय हैं, इस कारण वे यत्न से नित्य पूजने योग्य हैं ॥ ४५ ॥

विरूपाक्षामराधीश कपर्दिन्निति यो वदेत् ।
स धन्य इति विज्ञेयः सत्यं सत्यं द्विजोत्तमाः ॥४८॥

हे विरूपाक्ष ! हे देवों के स्वामी ! हे कपर्दिन् ! जो ऐसा नित्य कहता है, हे द्विजोत्तम ! वह धन्य है, ऐसा सत्य-सत्य मानो ॥ ४८ ॥

श्रीनीलकंठ कामारे परमेशेति यो वदेत् ।
स धन्य इति विज्ञेयः सत्य सत्यं द्विजोत्तमाः ॥४९॥

हे श्रीनीलकण्ठ ! हे कामारे ! हे परमेश ! ऐसा जो नित्य कहता है, हे ब्राह्मणश्रेष्ठ ! वह निःसन्देह धन्य है ॥ ४६ ॥

* देवी गिरिराजतनयाने (लोक के उपकारार्थ) भगवान्

---

* देव्युवाच । येषु तीर्थेषु यन्नाम कीर्तनीयन्तत्र प्रभो ।
कीर्तयेत्कीर्त्यनाम्नां स च मोक्षमवाप्नुयात । (ना. ख. अ. १०६)
तत्कात्स्न्येंन मम ब्रूहि यद्यहन्तव वल्लभा ।
कीर्तन करने योग्य नाम से जो कीर्तन करता है, वह निश्चय मोक्ष को पाता है ।

देवदेव शिवजी से प्रार्थना की-हे प्रभो! यदि मैं आपकी प्यारी हूं। तीर्थों में जो नाम कीर्तन करने योग्य हो उनको मुझसे कहिये। भगवान् बोले-काशी में महादेव, प्रयाग में महेश्वर, नैमिषमें देवदेव (विष्णु) गयामें प्रपितामह (ब्रह्मा) कुरुक्षेत्र में स्थाणु, प्रभासक्षेत्र में शशिशेखर, पुष्कर में, अजोगन्ध और विश्वेश्वर कीर्तनीय हैं। अट्टहास में महानाद, महेन्द्र में महाव्रत, उज्जयिनी में महाकाल, मरुकोट में महोत्कट कीर्तनीय हैं। शंकुकर्ण में महातेज, गोकर्ण में महाबल, रुद्रकोटि में महायोगी, स्थेश्वर में महालिंग, हर्षित में हर्ष, वृषध्वज में वृषभ, केदार में ईशान, मध्यमेश्वर में शर्व कीर्तनीय हैं।

सुपर्ण नाम क्षेत्र में सहस्रांशु, कार्त्तिकेश्वर में सुसूक्ष्म, वस्त्रपथ में भव, कनखल में उग्र, भद्रकर्ण में शिव, दंडक में दंडी, त्रिदंडक में ऊर्ध्वरेता, कुरुजांगल में चंडीश, अभ्र में कृत्तिवास, छगल में कपर्दी, कालंजर में नीलकंठ व मंडलेश्वर में श्रीकण्ठ कीर्तनीय हैं।

काश्मीर में विजय, मरुकेश्वर में जयन्त, हरिश्चन्द्र में हर, पुरश्चन्द्र में शङ्कर, वामेश्वर में जटी, कुक्कुटेश्वर ये सौम्य, भस्मगात्र में ॐकार व अमरकण्टक में भूतेश्वर, त्रिसन्ध्या में त्रैयम्बक विरजा में त्रिलोचन, अर्केश्वर में दीप्त, नैपाल में पशुपालक (पशुपतिनाथ), दुष्कर्णा में यमलिंग; करवीर में कपाली, जलेश्वर में त्रिशूली, श्रीशैल में त्रिपुरान्तक अयोध्या

में नागेश्वर, पाताल में हारेश्वर, कारोहण में नकुलीश, देविका में उमापति, भैरव में भैरवाकर, पूर्वसागर में अमर, सप्तगोदावरी में भीम, विमलेश में स्वयम्भू, कर्णिकार में गणाध्यक्ष और कैलाश में गणाधिप, गंगद्वार में हिमस्थान, जललिंग में जलप्रिय, पाण्डव में अतल, वद्रिकाश्रम में भीम कीर्तनीय हैं ।

× × ×

सुमिरि हृदय शिव सुवनको, चरण कमल शिर नाय ।
विनय करौं कर जोरि के, होवहु सदा सहाय ॥ १ ॥

हे दीनबन्धु दयालु शङ्कर दीन जन अपनाइये ।
काम क्रोधादिक खलों ने बाँध रक्खा है मुझे ।
इन बन्धनों से मुक्त कर हर शान्ति सुख सरसाइये ॥
हर एक में हर को लखूँ हर २ सदा रटता रहूँ ।
कुछ और मैं चाहूँ नहीं निज भक्ति भाव दिखाइये ॥ हे० ॥
प्रेम की वर्षा करो सूखे हृदय पर हे प्रभो ।
तव प्रेम में भीजा रहूं मम हृदय में बस जाइये ॥ हे० ॥
करता रहूं नित बन्दना हे ईश लौ लागी रहे ।
गौरीश 'गौरी' को जरा निज दृष्टि तो दिखलाइये ॥ हे० ॥

राग देश ।

भज मन चन्द्रशेखर-चरण ॥ टेक ॥
सगुण-निर्गुण रूप जाको नाम मंगल करन ॥

शेष सुमिरन करत जाको धरे रज सम धरन ।
सिद्ध औ सनकादि नारद निगम आगम बरन ॥
व्याध महा असाधु पामर अन्त लाग्यो मरन ।
शीत बस शिवनाम सुमिरत मिटी जियकी जरन ॥
इन्द्र चन्द्र कुबेर विधि हरि रहत जाकी शरन ।
कहत देविसहाय शिव भजु मिटै आवागमन ॥

(शैवमनोरञ्जनी)

भैरवी ।

ऐसेही वितैहौ की चितैहौ चित लायके ॥ टेक ॥
तात मात मेरे आप कहौं में रिसायके ।
सरन में तिहारी आयों कासों कहौं जायके ॥
दीन के दयालु मेरी दीनता मिटायके ।
सुखको समूह दीजै दरस अघायकें ॥
अपनो समुझि के मोकों लीजै अपनायके ।
जननी हमारी अम्बा कहौ समुझायके ॥
देवीसहाय सदा नाम कहे गायके ।
काशी बास दीजै स्वामी वेगही बुलायके ॥ २ ॥

छंद ।

हे दीनबन्धु दयालु शंकर जानि जन अपनाइये ।
भवधार पार उतार मोकों निज समीप बसाइये ॥
जाने अजाने पाप मेरे आप तिनहिं नसाइये ।

कर जोर जोर निहोर माँगौं वेगि दरस दिखाइये।
देवीसहाय सुनाय शिवको प्रेम सहित जे गावहीं॥
जगयोनि से छुटिजायँ तेनर सदा अति सुख पावहीं॥३॥

झंझोटी।

दयानिधि डूबत राख लियो॥ टेक॥
मन मेरो मग छाँड़ि चलन हित पूरण पैज कियो।
करि तुम कृपा जानि निज सेवक औसर नाहिं दियो॥द०
अब प्रभु करहु सोय जिमि होई निर्मल मोर हियो।
यदपि कपूत तदपि सुत तेरो भवनिधि भीम भियो॥दया०
भखी कुसंग विषय नर पामर मैं पुनि केहि भांति जियो।
जपतप नाम सुधा आलस वस कछु २ नाम लियो॥दया०
देवीसहाय धन्य गुरु पद रज परसत पाप छियो।
छूटिगई सिगरी दुचिताई भयो अपाप जियो॥दया० ॥४॥

गजल।

लगालो चरण अपने में सदाशिव साथ तुम मुझको।
मैं पाऊँ भक्ति वर अब तो दरस देनाजी तुम मुझको॥
प्रेम वो प्रीतकी डोरी बहुत दिनसे लगी मोरी।
जरा अवतो दया करके निहारो नाथ तुम मुझको॥
आश तज के सकल केरी भयों मैं अब शरण तेरी।
भरोसा आपही का है सम्हारो नाथ तुम मुझको॥
काम औ क्रोध की ढेरी हिये में आनकर घेरी।

अपार इस अपनी मायासे उबारो नाथ तुम मुझको ॥
हरो भ्रम जालका फाँसा करो मम चित्त में बासा ।
देवी सहाय दरश दीजे उमापति नाथ तुम मुझको ॥ल०।

× × ×

है जगसार विचार यही शिव नाम जपो दिन रातीरे ।
जन्म मरन दुख छूट जाय और तीनों ताप नसातीरे ॥
सोइ ज्ञानी सुशील जगमें जो देत सलाह सुहातीरे ।
गौरीपतिके भजन विना यह वैस वृथा सब जातीरे ॥
शिवपद विमुख मनुज जगमें ते जानहु आत्माघातीरे ।
नरक परे पछितात सदा जमगन मारत घन छातीरे ॥
देवी सहाय समाय रह्यो शिव प्रेम नेम वहु भांतीरे ।
हृदय कमल में देखिपरैं शिव चरण कमल नख पांतीरे॥१॥

× × ×

है शिव नाम सुधाते नीको ॥ टेक० ॥
जाके लिये विराग होत उर भक्ति भावको टीको ॥
दृढ़ विश्वास आस चरणन को सुखदाई सबहीको ।
श्रुति सिद्धांत सराहत जाको ब्रह्मनाम शिवहीको ॥
देवी सहाय छाँछ नहीं छूवत स्वाद सराहत घीको ॥ २ ॥

× × ×

शिव कहो शम्भु कहो शिवपति ईश कहो ।
गौरी नाथ शंकर को सुमिरत रहुरे ॥

हर कहो शूली कहो मनमें महेश कहो ।
काशी विश्वनाथ कहो केते सुख लहुरे ॥
गिरिको विहारी कहो गंगा सीसधारी कहो ।
विषको अहारी कहो यही गाढ़े गहुरे ॥
काशीजीको वासी कहो सुखको निवासी कहो ।
तीनों तापनासी अविनासी क्यों न कहुरे ॥ ३ ॥

कजली ।

शिव शिव सुमिरन कर न मन मेरा तेरो भव बन्धन छुटिजाय ।
लख चौरासी फेरा करके पायो नरतन आय ॥
भजो चरण शिव साम्ब उमाके ममता मोह विहाय ।
जाको ध्यान धरत सुरनर मुनि ब्रह्मादिक सब आय ॥
वाहीते मैं कहत टेरके सबसों विनय सुनाय ।
देवीसहाय नरतन यह भजन करो मनलाय ॥

× × ×

मनवां शिव शिव शिव सुमिरो आई सावन की वहार ॥टेक॥
परब्रह्म परमेश्वर शंकर तिनहीं को पुकार ।

नोट—पूजनीय शिवभक्त १०८ देवीसहायजी वाजपेयी एक अलौकिक शिवभक्त पावनपुरी काशी में होगये हैं । आपके कुछ भजन ऊपर दिये गये हैं इन भजनों का संग्रह कर पुस्तक ४ भागों की बनाई है, जिसका नाम 'शैवमनोरंजनी' है आपका जीवनचरित्र भी मिलता है । मिलने का पता-पं० मोतीराम औदीच्य शारदाप्रकाशपुस्तकालय विन्ध्याचल मिरजापुर ।

सकल जगत की आसा तजके उनहीं को निहार ॥
नरतन पाय फेर मत भूलो चेतो अबकी वार ।
देवीसहाय नामशंकर को देख्यो जगमें सार ॥ ४ ॥

ग़ज़ल ।

शिव नाम जपने के लिए यह जीह जिनका डुल गया ।
पूर्व के पुण्यों का वस उनके किंवाड़ा खुल गया ॥
उनके पुरातन पाप का बिलकुल पता लगता नहीं ।
वह जो भारी झुंड था सो अब किधर वो कुल गया ॥
उनकी बहुत सी वासनाएँ हैं जो वैरिन रूपिनी ।
दुश्मन बुरे कामादि खल उनका भी दल दल दुलगया ॥
उनके अहित करने के कुल सामान हित कर हो गए ।
वो सुखों का खान हो कर दुख सब उसका भुलगया ॥
जितनी कुमति उर में रही उनके सुमति सब होगई ।
वो भजन में मग्न हो सत्पुरुष तद्वत् तुल गया ॥
प्रभु की कृपा पूरे परम पद का वो अधिकारी भया ।
'चंद्रशेखर' से भी शठका उर अमल हो धुल गया ॥

ग़ज़ल ।

आए हैं दुनिया में हम हर सुयश गाने के लिए ।
हर समर्पण कर्म कर बंधन कटाने के लिए ॥
जो सुकृत की राशि दुर्लभ देव नर काया मिली ।
हर शरण होकर उसे सार्थक कराने के लिये ॥

काम क्रोधादिक पतंगों को क्षणक में 'आन' सी ।
भावना हरकी भभकती में जलाने के लिए ॥
पुत्र धन सुख स्वर्गकी तरुवासना सह शाख को ।
हर मेहर हथियार ले जड़ से मिटाने के लिए ॥
'चंद्रशेखर' ज्ञान योग विराग सब का सार जो ।
हर की हमराही में रह हर के कहाने के लिए ॥

ग़ज़ल ।

जपो शिव नाम को प्यारे वृथा क्यों जन्म खोते हो ।
समय को खोय कर खाली गये अवसर को रोते हो ॥
करी है शम्भु ने दाया दई नर सार तनु तुमको ।
भला क्यों पाय कर पारस नहीं तुम हेम होते हो ॥
मुनासिब हैं तुम्हें यह देह धरि के ईश को भजना ।
मगर हर हर ये भव हर में बैल से तुम तो जोते हो ॥
नहीं कुछ काम आवेगा किया पछताव पीछे का ।
यकीनी बात यह मेरी जिसे तुम फिर भी टोते हो ॥
शरण तुम 'चन्द्रशेखर' के वचन तन मनसे हो जाओ ।
न खाया चाहते संसार-सागर के जो गोते हो ॥

ग़ज़ल ।

भजोगे हर को तो हर हर बलाय हर लेंगे ।
शरण में आपनी तुमको स्विकार कर लेंगे ॥
पाप के पुञ्ज हैं जितने बुरे ज़माने के ।

विकल ह्वै वेगि ही आपी वो राह धर लेंगे ॥
सुकृत सुख सौख्य शुद्धबुद्धि सद्गुणादिक जो ।
विलखि वर वास को उर में तुम्हारे धर लेंगे ॥
वचोगे तुम त्रिताप के कराल ज्वालों से ।
सुभग हिय माँहिं शान्तिको जो आप भर लेंगे ॥
तरें भवसिन्धु को श्रमहीन 'चन्द्रशेखर' जू ।
शम्भु-पद-पद्म पीन पोत जो पकर लेंगे ॥

गजल ।

न कभी गर्व बढ़ाना ये कहे जाते हैं ।
किसी का दिल न दुखाना ये कहे जाते हैं ॥
पुण्य सम देह पाय प्रेम सों पुरारी के ।
चरण में चित्त लगाना ये कहे० ॥
वृद्ध गुरु विप्र सदा सन्त पाद-कञ्जों में ।
स्नेह सह शीश नवाना ये कहे० ॥
शक्ति भर दौरि मिले देवसरि को तीर तुझे ।
भूलि घर में न नहाना ये कहे० ॥
आय गृह सूत्र पड़े अपने कर माँहि तिसे ।
नेकचलनी से चलाना ये कहे० ॥
वर्ण अनुरूप धर्म कर्म की प्रणाली जो ।
यत्न युत सोपि निभाना ये कहे० ॥
न होने के हैं किसी के न हुये पुत्रादी ।

मोहमय वृत्ति न लाना ये कहे० ॥
त्यागि गुण-गान ज्ञान-खानि*'चन्द्रशेखर' के।
और गानों को न गाना ये कहे जाते हैं ॥

ग़ज़ल।

जपु नाम प्यारे शंकर, तजि क्रोध मोह माया।
जिसने जपा निरन्तर, भव सिन्धु पार पाया॥
बीती उसे बिसारो, आगे की कुछ खबर लो।
अब आगे पीछे छोड़ो, दिन भी करीब आया॥
क्या है छटा अनोखी, काले जटाकी सर में।
अर्धाङ्ग रूप हर का, मानों है धूप माया॥
हर अंग में विभूति, हर रंग में मगन हैं।
त्रैपुण्ड सर में सोहै निर्मल है जिनकी काया॥
अवढर ढरत शरण गहु गुण गान कर उन्हीं का।
भालों में चन्द्रमा ने जिनके ठिकान पाया॥
दुनियां के नेह नाते, सबको अनित्य जानो।
सब हैं यहीं के झगड़े, है सब बजार माया॥
माया परे है जिनसे उनही का नेह सच्चा।
जिनके गुणों को वेदों ने नेति नेति गाया॥

---

* शिवभक्त पं० चन्द्रशेखरजी शुक्ल मिरजापुर में निवास करते हैं। आपने सुललित पदों में 'शैव-प्रमोद' नामक पुस्तक की रचना की है। पुस्तक मिलने का पता—गौरीशंकर गनेड़ीवाले छपरा (सारन)।

भटका फिरा बहुत हो, खटका न जी का बीता ।
विश्राम तबही होगा, जब होगी उनकी दाया ॥
है आश एक उनकी, नहीं दूसरा भरोसा ।
तारैं यहीं या बोरैं * 'ललित' अब शरण में आया ॥

गजल ।

सदा शिव को जो जपते हैं, वही फल चार पाते हैं ।
बिना श्रम पार कर भवसिन्धु, फिर जग में न आते हैं ॥
दो०—मन चित जाके रमि रहे, प्रभु चरणन के माहिं ।
सकल पदारथ हस्तगत, होत यकायक ताहिं ॥
शैर—नहीं आश्चर्य कुछ इसमें कि श्रुति वेदान्त गाते हैं ।
दो०—विश्वनाथ कैलासपति, रटै निरन्तर जोय ।
छुटै जगत जंजाल से, आवागमन न होय ॥
शैर—बने शिव रूप फिर उनको, नहीं पातक सताते हैं ।
दो०—ललित सदा सुमिरन करो, तन मन चित सब लाय ।
नेक चितै प्रभु देहिंगे, दुख दारिद्र नशाय ॥
शैर—सुमिरु मन भोला शम्भू को, जो अति दानी कहाते हैं ॥

* ललितजी जिला सारन में एक डसरी मौजा है, वहाँ के निवासी हैं। आपका नाम बा० विन्ध्याचल प्रसाद जी है आप मोतिहारी में वकालत करते हैं। आपका प्रेम युगलसरकार के (शिवाशिव) के चरणों में है। आपने 'शिवाशिव-ललितावली' नामक पुस्तक की रचना की है।

जपकाले तु मन्त्रस्य ध्येयो देवश्चतुर्भुजः

ध्यायेन्नित्यं महेशं रजतगिरिनिभं चारुचन्द्रावतंसं
रत्नाकल्पोज्ज्वलाङ्गं परशुमृगवराभीतिहस्तं प्रसन्नम् ।
पद्मासीनं समन्तात् स्तुतममरगणैर्व्याघ्रकृत्तिं वसानं
विश्वाद्यं विश्ववन्द्यं निखिलभयहरं पञ्चवक्त्रं त्रिनेत्रम् ॥

GITA PRESS, GORAKHPUR.

श्रीगणेशाय नमः ।

ध्यानामृतम् ।

कर्मयज्ञस्तपोयज्ञो जपयज्ञस्तदुत्तरः ।
ध्यानयज्ञो ज्ञानयज्ञः पञ्च यज्ञाः प्रकीर्तिताः ॥४४॥

(वा. सं अ. २२)

कर्मयज्ञ, तपयज्ञ, जपयज्ञ, ध्यानयज्ञ, ज्ञानयज्ञ, क्रमसे पाँच, यज्ञ हैं । इनमें उत्तरोत्तर एक दूसरे से श्रेष्ठ हैं ॥ ४४ ॥

कर्मयज्ञ—*सकाम, निष्काम कर्म दो तरह के कर्म होते हैं । सकामी कामनाको प्राप्त हो भोग भोगकर फिर कामासक्त हो जाता है । निष्कामी (भगवदर्थ) कर्मकर या कर्म के फलको त्यागकर भगवत् प्राप्ति रूप परम शान्ति को प्राप्त होता है ।

तपयज्ञ ÷ —तपयज्ञ में प्रीतिवाला दिव्य भोगको भोगकर

---

* युक्तः कर्मफलं त्यक्त्वा शान्तिमाप्नोति नैष्ठिकीम् ॥ अयुक्तः कामकारेण फले सक्तो निबध्यते ॥१२॥ (श्रीमद्भा० अ० ५०)

÷ श्रेयश्च प्रेयश्च मनुष्यमेतस्तयोः सम्परीत्य विविनक्ति धीरः । श्रेयो हि धीरोऽभिप्रेयसो वृणीते प्रेयो मन्दो योगक्षेमाद्वृणीते ॥ २ ॥ (कठोपनिषत् द्वितीयवल्ली)

वहां से च्युत हो पृथ्वी में जपध्यान में प्रीतिवाला होता है।

× जपयज्ञ-जपध्यान में प्रीतिवाला याने इसका अनुष्ठान करनेवाला मनुष्य शीघ्र ज्ञानको प्राप्त हो शिवके सायुज्य को प्राप्त होता है।

ॐ ध्यानयज्ञ—जिसका ध्येय ध्यान है, वह संसारसागर से तर जाता है। वह हिंसादि दोषोंसे छूटकर विशुद्ध चित्त होजाता है। उससे परे ध्यानयज्ञ अपवर्ग (मोक्ष) फलका देनेवाला है और बाह्य कर्म बड़े फलको देनेवाले नहीं होते।

इसी प्रकार ध्यान करनेवाले का शरीर ऐश्वर्ययुक्त तथा सूक्ष्म होजाता है (ध्यानिनां हि वपुः सूक्ष्मं भवेत्प्रत्यक्षमैश्वरम्) ज्ञानसे (ध्यानका महत्त्व जानने से) ध्यान, ध्यानसे ज्ञान, और ज्ञानसे परम शान्ति मुक्ति मिलती है (तदुभाभ्यां भवेन्मुक्तिस्तस्माद्ध्यानरतो भवेत्) इस कारण अपना कल्याण चाहनेवालेको जपध्यान परायण हो जाना चाहिये। भगवान् ने अपने मुखारविन्द

× जपध्यानरतो मर्त्यस्तद्वैशिष्ट्यवशादिह ॥ ४९ ॥
ज्ञानं लब्ध्वाचिरादेव शिवसायुज्यमाप्नुयात् ॥ ५० ॥
पूर्वाभ्यासेन तेनैव ह्रियते ह्यवशोऽपि सः ॥ ४४ ॥ (गी० अ० ६)
ॐ ध्यानं ज्ञानं च यस्यास्ति तीर्णस्तेन भवार्णवः ॥
हिंसादिदोषनिर्मुक्तो विशुद्धश्चित्तसाधनः ॥ ५२ ॥
ध्यानयज्ञः परस्तस्मादपवर्गफलप्रदः ॥
बहिः कर्मकरा यद्वन्नातीवफलभागिनः ॥ ५३ ॥

से कहा है ध्यान यानी मेरे स्वरूपकी चिन्ता ही समाधि है
ध्यै चिंतायां स्मृतो धातुः "शिव" चिंता च मुहुर्मुहुः ॥१६॥

'ध्यै-चिन्तायां' धातुसे ध्यान पद सिद्ध होता है (देवदेव) शिवकी चिन्ता यानी चिन्तवन बार-बार करना चाहिये। जैसे थोड़ा भी योगाभ्यास पापों का विनाश ही करता है, ऐसे ही श्रद्धासे परमेश्वर का ध्यान करते ही क्षण भरमें सब पाप नष्ट हो जाते हैं।(क्षणमात्रं ध्यानं पापं विनाशयेत्) मनमें किसी प्रकार का विक्षेप न हो, यही ध्यान है। इस प्रवाहरूप ध्यान का बुद्धि अवलम्बन है। जो ध्येय वस्तु है, सो बुद्धिमानोंने अभ्यासहित शिवका ध्यान कहा है। ध्यान से सुख और मुक्ति प्राप्त होती है। इस कारण सब कुछ छोड़ कर मनुष्य ध्यान युक्त होवे। विना ज्ञान के और प्रमाद युक्त पुरुषों को ध्यान नहीं होता। जिसके पास ध्यान और ज्ञान है, वह भवसागर के पार हो चुका। जब सब पापक्षय होजाता है, तब ज्ञान-ध्यान में बुद्धि होती है। पापयुक्त बुद्धिवालों को उसकी वार्ता भी दुर्लभ है। जो क्षण मात्र भी श्रद्धापूर्वक परमेश्वर का ध्यान करता है, उससे जितना कल्याण होता है, उसका अन्त नहीं है। ध्यान के समान तीर्थ तप और यज्ञ नहीं है। इस कारण चतुर पुरुष और सब कृत्यों को छोड़कर सब दुःखों के दूर करने को शिवयोग करे (सर्व-दुःखप्रहाणाय शिवयोगं समभ्यसेत्)

शिव के चिन्तन करते ही सब सिद्धियाँ उपस्थित होजाती हैं। इसलिये पूर्व अभ्यास वश जिस जिस वस्तु में मन जावे,

उसमें शिवरूप का ध्यान करे याने (मूर्त्यंतरेषु ध्यातेषु शिवरूपं विचिंतयेत्) जो रुचि (अभिलाष) और अभ्यासादिसे शिवके रूप का चिन्तन करता हो, उसे चाहिए कि मनकी स्थिरता को देखता हुआ उसका बारम्बार ध्यान करै। उसमें भी प्रथम सविषय फिर निर्विषय ध्यान करै। कितने पुरुषों की यह भी सम्मति है कि निर्विषय ध्यानही नहीं है बुद्धि की ही किसी सन्तति का ध्यान है। इसी कारण सविषय ध्यानवान् सूर्य की किरणों के समान आश्रयवाला है।

सूक्ष्म आश्रय का ही नाम निर्विषय है, इससे अधिक परमार्थ दूसरा नहीं है अथवा सविषय ध्यान साकार का आश्रयवाला है। निराकार आत्मा के जानने ही का नाम निर्विषय ध्यान है, निर्वीज अथवा सवीज जो भी हो सो ध्यान कहा गया है।

अव्याक्षिप्तेन मनसा ध्यानं नाम तदुच्यते ॥
ध्येयावस्थितचित्तस्य सदृशः प्रत्ययश्च यः ॥ ५२ ॥

(वा० सं० उत्तरखण्ड)

एकाकार वृत्ति करके शिव में स्थित चित्त का प्रत्ययान्तर रहित प्रवाह का नाम ध्यान है। योगसूत्र में (तत्र प्रत्ययैकतानता ध्यानमिति) किसी स्थान में देह का अवलम्बन ज्ञान की स्थिरता और दूसरे ज्ञान का अभाव होना ही ध्यान है, अथवा सिद्ध आसन कर शरीर को शिथिलकर नासिका के अग्रभाग में दृष्टि लगाकर परम शान्त परमात्मा ईश्वर के रूप

अमृत का भौंके* बीच में ध्यान करे और सब प्रमादों को छोड़ कर कल्याण दायक शिव का ही ध्यान करे (सर्वमन्यत्परित्यज्य शिव एव शिवंकरः) क्योंकि (परः शिवो ध्येयः) परम शिव ही ध्यान के योग्य हैं। इस अर्थ में अथर्व श्रुति समाप्त हुई है। वह शिव सबके स्वामी, सब में प्राप्त, सब में उदयरूप, सर्वज्ञ, निरन्तर ध्यान योग्य, रूप के भेद से अनेक होकर भी एक हैं। विमुक्ति प्रत्ययवाले और अणिमादि प्रत्ययवाले यह दो प्रकार के प्रत्यय के ध्यान के प्रयोजन कहे गये हैं। ध्याता (ध्यान करनेवाला) ध्यान, ध्येय (जिसका ध्यान किया जाय) और जो ध्यान का प्रयोजन है, यह चारों बातें जानकर योग करे।

ध्यान करनेवाला पुरुष ज्ञान-वैराग्य से सम्पन्न, श्रद्धा तथा क्षमा से युक्त, ममतारहित, और सदा उत्साहवान् होता है। ध्यान करनेवाला जब जप से थक जाय तो ध्यान करे, ध्यान से थक जाय तो फिर जप करे। ध्यान से युक्त पुरुष का योग शीघ्र सिद्ध होता है। ध्याता में ध्येय के स्वभाव का आवेश होता है, उसे समाधि कहते हैं। अर्थात् अर्थमात्र स्वभाव से निर्भास नाम होता है और वह वातरहित सागर के समान स्थिर होता है। ध्यान और समाधि में यह भेद है कि ध्यान में

* दशाहे वा षडस्ने वा चतुरस्ने शिवं स्मरेत् ।
भ्रुवोरंतरतः पद्मं द्विदलं तडिदुज्ज्वलम् ॥

ध्यातृदेह में ध्यान की त्रिपुटी का ज्ञान बना रहता है, किन्तु समाधि में ऐसा नहीं रहता। केवल ध्येयमात्र की स्फूर्ति रहती है।

मनः प्रत्यक्चित्ते सविधमवधायात्तमरुतः
प्रहृष्यद्रोमाणः प्रमदसलिलोत्सङ्गितदृशः ।
यदालोक्याह्लादं ह्रद इव निमज्ज्यामृतमये
दधत्यन्तस्तत्त्वं किमपि यमिनस्तत्किल भवान् ॥ २५ ॥

लगा के आत्मा में सविध मनको रोकि पवनै,
भरे रोमांचोंसे, हरष-जल-पूरे नयन हैं।
लखैं जोगी जाको अमृतसरमें स्नान करिधौं,
लहैं जो आनन्दै अकथ शिव ! सो तत्त्व तुमहौ ॥ २५ ॥

हे वरद ! जिसे कहना अशक्य है, उसे सत्यज्ञान, अनन्त, आनन्द रूप जिस अपूर्व तत्त्व (वस्तु) को वेदान्त वाक्य-जन्य अखण्डाकार वृत्ति से अपरोक्ष (प्रत्यक्ष) करके शमदमादि* साधन सम्पन्न होते हैं। यमी (संयमी) लोग ब्राह्म सुखसे

---

* शम, दम, उपरति, तितिक्षा, श्रद्धा और समाधान, ये छ साधन हैं। आन्तरिन्द्रिय अर्थात् ज्ञानेन्द्रियों का निग्रह शम कहाता है, दम बाह्येन्द्रिय अर्थात् कर्मेन्द्रियों के निग्रह को कहते हैं ॥ १२ ॥ उपरम अर्थात् संसार से उपरमण अर्थात् उपराम होने के साथ ही साथ स्वधर्म का अनुष्ठान करने को ही उपरति कहते हैं। तितिक्षा, शीत, उष्ण, सुख-दुःखादि द्वन्द्वों का सहिष्णु अर्थात् सहनशील होना है,

सुख से विलक्षण निरतिशय आह्लाद (सुख) को अपने अन्तः करण में धारण करते हैं, वह तत्त्व आप ही हैं ।

वह सुख नित्य होने के कारण उत्पादन करने योग्य नहीं है, अतः धारण करना ही कहा गया है। वह तत्त्व श्रुति में सत्यज्ञान अनन्त आनन्दरूप से प्रसिद्ध है । 'किल' शब्द का अभिप्राय है तार्किक आदि से कहे गये प्रकारवाला नहीं, अतः आप परम मङ्गलरूप क्यों नहीं हैं ? अर्थात् अवश्य ही परम मङ्गलमय हैं, यह वाक्य शेष है ।

आह्लाद की निरतिशयता को दिखाने के लिये दृष्टान्त कहते हैं ।

'अमृतमये ह्रदे निमज्ज्येव' अमृतमय तालाब में डुबकी (गोता) लगाने से जैसा परम आह्लाद (आनन्द) होता है। उसके समान जो आह्लाद है। जिस सुख के लेशमात्र का भी स्पर्श करके साधक सकल सन्ताप से निवृत्त होकर शान्ति पूर्वक सुखी होते हैं, उसके निमज्जन (गोता) रूप सर्वाङ्ग संयोग से जो आनन्द होता है, उसका तो कहना ही क्या है ! इस रीति से कारण की अधिकता से कार्य की अधिकता की सूचना की गई है। यद्यपि उस उत्कृष्ट ब्रह्मानन्द

श्रीगुरुदेव के वचनों पर अर्थात् ज्ञानप्रतिपादक शास्त्रोंपर विश्वास करना "श्रद्धा" है और 'मैं मोक्ष को प्राप्त होऊँ' ऐसी इच्छा करना मुमुक्षुत्व है, इन चार प्रकार के साधनों में योग्यता प्राप्त करने के पश्चात् साधक तत्त्वविवेक का अधिकारी होता है ।

का कोई दृष्टांत ही नहीं है। तथापि थोड़े से सादृश्य से भी लोगों की बुद्धि की दृढ़ता के लिये ऐसा कहा गया है। इस ब्रह्मानन्द के अनुभव के असाधारण कारण को कहते हैं। मनः, इत्यादि, चित्त (हृदय कमल) में संकल्प-विकल्पात्मक मन को निरुद्ध (रोककर मनोवृत्तिशून्य) करे। कैसा वह मन है ? जो प्रत्येक है अर्थात् चक्षुः आदि इन्द्रिय द्वारा बाह्य विषयों में प्रवृत्त न होकर अन्तर्मुख ही रहता है। कैसे यमी हैं ? कि जिन्होंने शास्त्रोपदिष्टमार्ग से विधिपूर्वक प्राणायाम किया है। यहां 'सविधम्' पद से यम नियम × आदि साधन सूचित किया है, विषयों से इन्द्रियों का निवर्तनरूप प्रत्याहार प्रत्येक पद से सूचित किया गया है।

"चित्ते" पदसे हृदय कमल नामक देश में सम्बन्ध रूप धारणा

× यमनियमासनप्राणायामप्रत्याहारधारणाध्यानसमाधयोऽष्टावङ्गानि ॥ २९ ॥

अहिंसा, सत्य, आस्तेय, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह यह यम हैं। (अहिंसा) किसी प्रकार से किसी काल में किसी प्राणी को द्वेषबुद्धि से किसी प्रकार की हानि न पहुँचाना, (सत्य) जो वाक्य छल कपट से भरा न हो, (अस्तेय) बिना दिये और बिना कहे दूसरे की वस्तु ग्रहण न करना, (ब्रह्मचर्य) उपस्थ इन्द्रियों को वश में रखना और अष्ट विध मैथुन का त्याग करना (अपरिग्रह) प्रतिग्रह का न ग्रहण करना अर्थात् किसी से दान न लेना।

कही गई है। 'अवधाय' पदसे ध्यान और समाधि कही गयी हैं। भगवान् पतञ्जलि ने कहा है–

१–देशसम्बन्धश्चित्तस्य धारणा, २–तत्र प्रत्ययैकतानता ३–तदेवार्थमात्रनिर्भासं स्वरूपशून्यमिव समाधिः इति ।

१—चित्त के वशीकरण के लिये मूलाधार स्वाधिष्ठ, मणिपूरक, अनाहत, विशुद्धि × अज्ञा-नामक चक्रों में से किसी एक-चक्ररूप देश में मन के स्थिर करने को धारणा कहते हैं। २—प्रत्येक का एक ही विषय में प्रवाह ध्यान कहलाता है। ३—वह विषयप्रवाह दो प्रकार का है, एक तो टूट-टूट कर होनेवाला और दूसरा निरन्तर (सन्तत) रहनेवाला। वे दोनों क्रम से ध्यान और समाधि कहलाते हैं। इन सब से ब्रह्मसाक्षात्कार का हेतु * अष्टाङ्गयोग का परिपाकरूप 'निदिध्यासन' कहा गया है। इस प्रकार ब्रह्मानन्दानुभव का कारण कहकर कार्य्य कहते हैं–प्रहृष्यद्रोमाणः अर्थात् वे यमी लोग अमृतमय ह्रद में डूब कर (गोता लगा कर) अत्यन्त पुलकिताङ्ग (हर्ष के कारण रोमाञ्चयुक्त शरीरवाले) तथा 'प्रमदसलिलोत्सङ्गितदृक्' हर्ष के अश्रुओं से पूर्ण नेत्रोंवाले हो जाते हैं। यह दोनों यमियों के आनन्दानुभव के विषय में

× योगी लोग शरीरस्थ षट्चक्रों में ध्यान किया करते हैं।

* यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान, और समाधि ये योग के आठ अङ्ग हैं ॥ २९ ॥

अनुमान के लिङ्ग (चिह्न) कहे गये हैं। यहाँ 'प्र' शब्द से और 'उत्सङ्गित' शब्द से लौकिक सुख की अपेक्षा 'अतिशयविशेष' व्यक्त (व्यञ्जनावृत्ति से बोधन) किया गया है। जिस तत्त्व के अवलोकन मात्र से दूसरे साधक परमानन्द को प्राप्त होते हैं। 'वह स्वयं परम आह्लादरूप है-इसका तो कहना ही क्या है।

"विज्ञानमानन्दं ब्रह्म" आनन्दो ब्रह्मेति व्यञ्जनात्, राम एव परमानन्दः, यो वै भूमा तत्सुखं, को ह्येवान्यात् कः प्राण्यात् यदेव आकाश आनन्दनस्यात् ।"

इत्यादि श्रुतियां भी इस आनन्द के विषय में प्रमाण रूप जाननी चाहिये ॥ २५ ॥

अब ब्रह्मज्ञान की प्राप्ति के लिये ईश्वर योग (संयोग) करनेवालों के ध्यान करने योग्य स्थान और आसनादिकों को कहते हैं।

> विविक्तदेशे च सुखासनस्थः'
> शुचिः समग्रीवशिरः शरीरः ।
> अत्याश्रमस्थःसकलेन्यिाणि
> निरुध्य भक्त्या स्वगुरुं प्रणम्य ॥ ५ ॥

(केवलोपनिषद्)

पवित्र और एकान्त स्थान में तथा शांत समय में सुख देनेवाले पद्मादि आसन से बैठनेवाला, जिसकी गरदन, शिर

और शरीर समतल (सीधा) है, ऐसा भीतर-बाहर से (भीतर रागद्वेष से बाहर मल मूत्रादि से) पवित्र परम हंस सब इन्द्रियों को रोक कर अपने गुरु को प्रेम पूर्वक प्रणाम करके ध्यानादि करे। ऐसा श्वेताश्वतरोपनिषद् में लिखा है।

समे शुचौ शर्करा-वह्नि-वालुका-
विवर्जिते शब्दजलाश्रयादिभिः।
मनोऽनुकूले न तु चक्षुपीडने
गुहानिवाताश्रयणे प्रयोजयेत् ॥ १० ॥

समतल, पवित्र, छोटे २, पत्थर, अग्नि और पत्थर के चूरे से रहित, शब्द, जल और आश्रय से रहित, मन के अनुकूल, चक्षुको पीड़ा नहीं देनेवाली गुफा में या किसी वायु रहित स्थान में योगाभ्यास करे ॥ १० ॥

हृत्पुण्डरीकं विरजं विशुद्धं विचिन्त्य मध्ये विशदं विशोकम्।
अचिन्त्यमव्यक्तमनन्तरूपं शिवं प्रशान्तममृतं ब्रह्मयोनिम्॥६॥
तमादिमध्यान्तविहीनमेकं विभुं चिदानन्दमरूपमद्भुतम्।
उमासहायं परमं प्रभुं त्रिलोचनं नीलकण्ठं प्रशांतम् ॥
ध्यात्वा मुनिर्गच्छति भूतयोनिं समस्तसाक्षिं तमसः परस्तात् ॥७॥

जो राग-द्वेष आदि से रहित विशुद्ध हृदय कमल का ध्यान करके उसके मध्य में निर्मल, शोकरहित, अचिन्त्य, अव्यक्त, अनन्त, कल्याणरूप, परम शान्त, परम आनन्दरूप, विशाल

जगत् की उत्पत्ति के कारण, आदि, मध्य और अन्त से रहित सब जगह स्थित और अद्वितीय, व्यापक, स्वयं प्रकाश, आनन्द स्वरूप, रूपरहित और आश्चर्य रूप है । जिसकी उमा पार्वती (ॐ शिवं माति पतित्वेन मन्यते) सहायक है, ऐसे समर्थ, चन्द्र, सूर्य और अग्नि रूप तीन नेत्रवाले नीलकण्ठ और परम शान्त रूप परमेश्वर शिव का ध्यान (साक्षात्कार और ध्येय की एकता) करके मुनिजन प्रपञ्च के कारणरूप, सब के साक्षि स्वरूप और अविद्या के सम्बन्ध से रहित परमात्मा (शिव) को पाते हैं ॥ १७ ॥

> स ब्रह्मा स शिवः सेन्द्रः सोऽक्षरः परमः स्वराट् ।
> स एव विष्णुः स प्राणः स कालोऽग्निः स चंद्रमाः ॥८॥
> स एव यद्भूतं यच्च भाव्यं सनातनम् ।
> ज्ञात्वा तं मृत्युमत्येति नान्यः पन्था विमुक्तये ॥ ९ ॥

यही परम पुरुष, ब्रह्मा, शिव, इन्द्र, अविनाशी, उत्कृष्ट और यही स्वराट् अर्थात् किसी की अपेक्षा न करके स्वयं प्रकाशमान वस्तु है । यही विष्णु, प्राण, कालरूप, अग्नि और चन्द्रमा है । भूत भविष्यत् और वर्तमान रूप भी वही है, कहने का तात्पर्य यह कि सब कुछ वही है । इस सनातन ब्रह्म के स्वरूप को जानकर साधक मृत्यु के भी पार हो जाता है । इस ब्रह्मज्ञान के सिवाय स्वरूपप्राप्तिरूप मुक्ति के लिये और कोई उपाय नहीं हैं ॥ ८-६ ॥ अथवा—

ब्रह्मणो जनकं विष्णोर्वह्नेर्वायोः सदा शिवम् ॥
पाञ्चभूतानि सम्यग्ध्यात्वा गुणविधिक्रमात् ॥
मात्राः पञ्च चतस्रश्च त्रिमात्रा द्विस्ततः परम् ॥ २२ ॥
एकमात्रममात्रं हि द्वादशान्तं व्यवस्थितम् ॥
स्थित्यां स्थाप्यामृतो भूत्वा व्रतं पाशुपतं चरेत् ॥२३॥

(अ० ३ शि० गी)

जो (शिव देव) ब्रह्मा, विष्णु, अग्नि और वायु, इनके भी उत्पन्न करनेवाले यानी इनके भी कारण हैं। इस प्रकार के सदा शिवजी का ध्यान करके अग्निबीज से गृहाग्नि का ध्यान कर देह की उत्पत्ति के कारणभूत जो पंच महाभूत हैं, वे वायुबीज से पृथक् हैं। इस प्रकार भावना करे ॥२१॥

उन महाभूत के गुणों का क्रम से ध्यान करे। पंच महाभूतों के गुणरूप रस, गन्ध, स्पर्श और शब्द यह चार, तेज में शब्द, स्पर्श और रूप यह तीन, वायु में शब्द और स्पर्श यह दो और आकाश में शब्द यह एक ही गुण है। इसकी उत्पत्ति का क्रम इस प्रकार है-आकाश से वायु, वायु से तेज, तेज से जल और जल से पृथ्वी उत्पन्न होती है। इससे विपरीत अर्थात् पृथ्वी जल में, जल तेज में, तेज वायु में, वायु आकाश में लय हो जाता है। अधिक गुणवाले भूतत्त्व न्यून गुण वाले तत्त्वों में लय हो जाते हैं। साधक को चाहिये कि इन

सब की अमात्रा अर्थात् जिनका गुण नहीं, उन अहंकारादिकों को लय करे अर्थात् पंच महाभूतों का अहंकार में, अहंकार का महत्तत्त्व में, महत्तत्त्व का माया में और माया को सब के आधार भूत परमात्मा में लय करे। फिर अमृत बीज से तथा लय के विपरीत क्रम से यह देहोत्पत्ति विषय में प्रवृत्त है, ऐसी भावना करके कि मैं दिव्य देह हूँ और पूर्व देह के उत्पन्न करनेवाले सब गुण और द्रव्यों का अग्निबीजसे दाह करके परमात्मा (शिव) में लय करे। तदनन्तर अमृत बीज से पुनरुज्जीवन करके 'यह देह अमृत और दिव्य है' ऐसी भावना करे। इस प्रकार भूतशुद्धि करे।

दूसरी तरह से लोग इस प्रकार करते हैं-इन्द्रियों को मन में, मन को बुद्धि में, बुद्धि को अहंकार में, अहंकार को प्रकृति में और प्रकृति को पुरुष में लयकरके 'एक शिव ही है' ऐसी भावना करे।

शान्तो दान्तः प्रसन्नात्मा ध्यायन्नेवं महेश्वरम् ॥
हृत्पङ्कजे समासीनमुमादेहार्धधारिणम् ॥६॥
चतुर्भुजं त्रिनयनं विद्युत्पिङ्गजटाधरम् ॥
कोटिसूर्यप्रकाशं च चन्द्रकोटिसुशीतलम् ॥७॥
सर्वाभरणसंयुक्तं नागयज्ञोपवीतिनम् ॥
व्याघ्रचर्माम्बरधरं वरदाभयधारिणम् ॥८॥

व्याघ्रचर्मोत्तरीयं च सुरासुरनमस्कृतम् ॥
पञ्चवक्त्रं चन्द्रमौलिं त्रिशूलडमरूधरम् ॥९॥
नित्यं च शाश्वतं शुद्धं ध्रुवमक्षरमव्ययम् ॥ १० ॥

शान्त चित्त से, इन्द्रियों को जीते हुए प्रसन्न मन से महेश्वर का इस तरह ध्यान करे—हृदय कमल में विराजमान, अर्द्धाङ्ग में पार्वती को धारण किये ॥ ६ ॥ चारभुजा, तीननेत्र, विजली के समान पीली जटा धारण किये, करोड़ों सूर्य के समान प्रकाशमान, करोड़ों चन्द्रमा के समान शीतल ॥ ७ ॥ सम्पूर्ण आभूषणों से युक्त (गहना पहने) सर्पोंका यज्ञोपवीत धारण किये, व्याघ्रचर्म ओढ़े, भक्तों के अभयदाता (दुपट्टा) ओढ़े, देवता और असुरोंसे नमस्कृत, पांचमुखोंवाले, चन्द्रमा को मस्तकपर धारण किये, त्रिशूल और डमरू लिये, ॥ ६ ॥ नित्य, अविनाशी, शुद्ध, अक्षर, निर्विकार, इस प्रकार साकार भगवान् का ध्यान करे अथवा—॥ १० ॥

हंसकुन्देन्दुसदृशं मृणालरजतप्रभम् ॥
वृषरूपधरं साक्षात् क्षीरोमिव सागरं ॥ २४० ॥

जो हंस, कुन्द, और चन्द्रमा श्वेत, कमल और चाँदी की प्रभा के समान श्वेत कान्ति युक्त हैं, उन (शिवजी) का वृषभ (नन्दी) है और उसका नेत्र मधु के समान तपे हुये सोने के समान पीतवर्ण का है। हलके लाल वर्ण की सींगें हैं,

उस सुन्दर खुर, नासिका और मनोहर रूपवाले वृषभ पर भगवान् शिवजी उमा के साथ विराजमान हैं । वे पूर्णिमाकी रात्रि को उदित चन्द्रमा के समान शोभा युक्त हैं । उनका तेज सहस्रों सूर्यमणि के समान और संवर्तक नामक अग्नि के समान है, उनके तेज से और जटा में लिपटे सर्पोंके मणियों से संपूर्ण दिशायें पीत हो गई हैं, ऐसे अत्यन्त शान्त तथा अनेक आभूषणों से सजे हुए, श्वेत वस्त्र, श्वेत पुष्पों का हार, श्वेत चन्दन से जिनका मस्तक चर्चित है, श्वेत वर्ण की ध्वजा और श्वेत यज्ञोपवीत धारण किये, श्वेत बालचन्द्र रूप मुकुट को धारण किये, उदय होते हुए शरद ऋतु के चन्द्रमा के समान श्वेत गौर शरीर पर श्वेत कमलों की सुगन्धित माला पहने, पिनाक और पाशुपत नामक दिव्य अस्त्र को हाथ में धारण किए, त्रिशूल तथा परशु आदि बहुत से दिव्य अस्त्र धारण किये हैं ।

जगत् के कारणभूत शंकर की × बाईं ओर शंख चक्र और गदा को धारण कर नारायण गरुड के ऊपर चढ़कर स्थित हैं, दाहिनी ओर लोकों के पितामह ब्रह्माजी हंसों से जुते हुये विमान पर स्थित हैं, उन के पास ही चारों वेद (ऋग, साम, अथर्व, यजुः) अपने ब्राह्मणों तथा शाखा

× वामपार्श्वगतश्चापि तथा नारायणः स्थितः ।
वैनतेयं समारुह्य शंखचक्रगदाधरः ॥७७॥ (महा. भा. अनु. १४)

सहित विराजमान हैं और स्वामिकार्तिकेय मयूर पर सवार होकर शक्ति तथा घण्टे को हाथ में लेकर जगत् जननी पार्वतीजी के समीप खड़े हैं। देव देव शंकर के सन्मुख दूसरे शंकर के समान ÷ नन्दी त्रिशूलको टेक कर खड़े हैं और उनकी धर्मपत्नी सुयशा अनेक आभूषणों को पहने हाथ में चामर (व्यजन) और पंखा लिये जगद्‌जननी उमादेवी की सेवा में उपस्थित है। स्वयम्भू आदि मनु, भृगु आदि ऋषि, इन्द्र आदि देवता और भूतगणतथा मातृकायें उनके आस-पास हाथ जोड़े खड़ी हैं और देवता गण अनेक प्रकार के स्तोत्रों से उनकी स्तुति कर रहे हैं। ※

गीत गाने और बजाने में चतुर गन्धर्व और किन्नर ताल देकर अनेक बाजों से युक्त पद गा रहे हैं।

उनके मध्य में रत्नजटित सिंहासन पर देवदेव शिव शरद ऋतु के बादल से निकले हुए सहस्र चन्द्रमा के समान शोभा

÷ एक नन्दी (बाहन अर्थात् धर्मराज) तपस्या द्वारा देवेश से वर प्राप्त कर बाहन रूप से निरन्तर उनकी सेवा कर अपने सौभाग्य को बढ़ा रहा है। इसकी कथा पुराण में है।

दूसरा नन्दी गणों का राजा, शिव-भक्त, शिलाद नामक ऋषि का पुत्र, जिसको शिव का अवतार माना जाता है।

※ ब्रह्मा भवं तदास्तौषीद्रथन्तरमुदीरयन्।
ज्येष्ठसाम्ना च देवेशं जगौ नारायणस्तदा॥

युक्त होकर विराजमान हैं। उनकी २१ उपचारों से मानसीक पूजा करे। इक्कीस उपचार ये हैं—

१ आवाहन २ स्वागत ३ आसन ४ पाद्य ५ अर्घ्य ६ आचमन ७ स्नान ८ वस्त्र ९ उपवीत १० गन्ध ११ अक्षत १२ पुष्प १३ धूप १४ दीप १५ नैवेद्य १६ पुनराचमन १७ ऋतुफल १८ ताम्बूल १९ पुष्पहार-आभूषणादि २० आरती २१ पुष्पाञ्जली तथा साष्टांग प्रणाम।

इन उपचारों से पूजन करने के अनन्तर निम्नलिखित स्वरूपवाले शिवजी का ध्यान तथा स्तुति करे।

उन भगवान् के चरणारविन्दों के दस नख अष्टमी के चन्द्रमा के सदृश शोभायमान देवताओं से नमस्कृत पुष्प परागों को गिरने से ढके हुये बादल में चन्द्रमा के समान शोभायुक्त चरणारविन्दों में अपना मस्तक रखे और प्रार्थना करे—

हे त्रिनेत्र और सहस्र नेत्रवाले, अर्धनारीश्वर, उपनिषद में गाये हुये योगीश! आपको नमस्कार है। हे भक्तों के शोक को हरनेवाले, भव, शर्व, विश्वरूप, और ईशान रूप! आपको नमस्कार है।

हे नाथ! आप हमारी गति हैं, साङ्ख्य में आपको पुरुष कहा है। आप पवित्र पुरुषों में ऋषभ हैं और योगियों में विभागों से रहित शिव हैं।

आप तीनों आश्रमवालों में गृहस्थ, ईश्वरों में महेश्वर, सब यक्षों में कुबेर और क्रतुओं (यज्ञों) में आप विष्णु कहलाते हैं।

हे सनातन ! मैं ऐश्वर्य (साधन) रहित हूँ, मुझको आप गति और मोक्ष दीजिये ! हे परमेश्वर ! हे देवेश !! मुझ से अज्ञात वा ज्ञात में जो अपराध हो गये हों, उन्हें क्षमा करिये।

हे देव ! आज मेरा जन्म हुआ क्यों कि देवताओं और दानवों के गुरु आप मेरे सामने विराजमान हैं ॥ ४३ ॥

देवता भी जिनका प्रत्यक्ष दर्शन नहीं कर सकते, ऐसे अपार पराक्रमी देव आप मुझे साक्षात् दर्शन दिये हैं। मुझ से अधिक भाग्यशाली और कौन होगा ? विद्वान् लोग परम तत्त्व रूप से, सनातनरूप से, अजन्मारूप से, ज्ञानरूप से, अक्षररूप से तथा रूप से अति विद्वान् आपका ध्यान करते हैं ॥ ४५ ॥

हे भगवन् ! आप सब प्राणियों के आदिदेव हैं, अविकारी हैं, सब तत्त्वों के विधान जाननेवाले तथा प्रधान पुरुष हैं, आप अपने दाहिने अङ्ग से लोकों को उत्पन्न करनेवाले ब्रह्माजी को रचते हैं और वामपार्श्व से लोकों की रक्षा करने के लिये विष्णु को उत्पन्न करते हैं। ❀

(महा० अनु० अ० १४)

और जब जगत् का प्रलय काल आता है, तब हे प्रभु शंकर ! आप रुद्र को उत्पन्न करते हैं। वह रुद्र स्थावर जंग-

---

❀ योऽसृजद्दक्षिणादङ्गाद्ब्रह्माणं लोकसम्भवम् ।
वामपार्श्वात्तथा विष्णुं लोकरक्षार्थमीश्वरः ॥

मात्मक संसार का संहार करते हैं। हे शिव ! आप कालरूप बन कर महा तेजस्वी संवर्तक अग्नि के समान होकर प्रलय के समय सब प्राणियों को ग्रस जाते हैं। हे देवाधिदेव महा-देव ! संसार के आदि में आप स्थावरजंगामात्मक जगत् को रचते और युगक्षय के अवसर पर सब प्राणियों की स्मृति का नाश कर डालते हैं। हे प्रभो ! आप सर्वत्र व्याप्त हैं, आप सब प्राणियों के आत्मस्वरूप हैं, आप ही सब प्राणियों के उत्पन्नकर्ता और सब की गति हैं तब भी सदा आपका सब लोग दर्शन नहीं कर सकते।

हे प्रभो ! यदि आप मुझे वर देना चाहते हैं और यदि आप मुझ पर प्रसन्न हुए हैं तो हे देव! हे सुरेश्वर !! *"आप के ऊपर सदैव मेरी भक्ति बनी रहै।"

इस तरह ध्यान करते-करते साधक का अंतःकरण स्वतः ही अनुराग तथा परम पदकी ओर बढ़ जाता है, अतः उनकी दृष्टि संसार की ओर से फिरकर कैवल्यरूपी मुक्तिपद की ओर लगजाती है।

तदा विवेकनिम्नं कैवल्यप्राग्भारं चित्तम् ।।२६।।

(कैवल्यपाद)

उस समय विवेक निम्न अर्थात् विवेकपथवाही होकर कैवल्य प्राग्भार अर्थात् कैवल्य की ओर ही झुका रहता

---

* भक्तिर्भवतु मे नित्यं त्वयि देव सुरेश्वर।

है। जो चित्त अर्थात् अन्तःकरण पूर्वकथित अवस्था में पहले विविध विषयों के भार से भाराक्रान्त होकर दब रहा था। वह अब घूम करके कैवल्यपदरूपी परमात्मा की ओर झुक जाता है।

अन्तःकरण के एक ओर विषय ओर दूसरी ओर परमात्मा है, जब तक अन्तःकरण विषय की ओर झुका रहता रहता, है तब तक उसकी दृष्टि पुरुष से फिरकर विषयरूपी संसार की ही ओर फंसी रहती है; परन्तु जब ध्यानादि के विशेष अभ्यासबल से अन्तःकरण में विषय-वासना पूर्णरूप से मिट जाती है, तब उस मुमुक्षु का चित्त विषय से मुख फेरकर कैवल्यपदरूपी परमात्मा के स्वरूप की ओर ही अनिमेष(टकटकी लगाये) होकर निहारने लगता है। तभी यह चित्त कैवल्य-भागी कहलाता है।

अन्त समय भयो विश्वनाथ अब ज़रा खबर लेने आओ।
तारक मंत्र सुनाय कान में मुझे दर्श देते जाओ॥
'गौरीशंकर' कर सनाथ प्रभु शिर पर कर धरते जाओ।
युगल छवी का दर्शन देके मेरे मन में बस जाओ॥

श्रीगणेशाय नमः ।

अभयामृतम्

शिव उवाच ।

योभक्तिमान् पुमाँल्लोके सदाहं तत्सहायकृत् ।
विघ्नहर्ता रिपुस्तस्य दण्ड्यो नात्र च संशयः ॥४॥

(रुद्रसंहिता ३।२३)

संसार में जो भक्तिमान् पुरुष होता है। मैं सदा उसकी सहायता करता हूँ, उसके विघ्नों को दूर किया करता हूँ, जो भक्त का शत्रु होता है, मैं उसको सदा दण्ड दिया करता हूँ, हे देवि ! मैंने भक्त के कारण क्रोध में भरकर कालको भी अपने नेत्र की अग्नि से भस्म कर दिया था, क्योंकि मैं अपने भक्तों की रक्षा करनेवाला हूँ। हे देवि ! पहले मैं भक्त के कारण सूर्य पर चढ़ गया था और परम क्रोध में भरकर शूल उठा उसको पकड़ कर जीत लिया था। हे देवि ! मैंने भक्त के कारण क्रोध में भरकर रावण को उसके भटों (योधाओं) सहित त्याग दिया था और उसका पक्षपात नहीं किया था। हे देवि ! मैंने भक्त की कुमति का आश्रय लेने पर व्यासजी को भी नन्दी से दण्ड

दिलाकर काशी से निकाल दिया था। हे देवेशि ! अधिक कहने से क्या, मैं सदा भक्तों के अधीन रहता हूँ। जो इस भक्ति को करता है, उसके मैं सदा अधीन रहता हूँ याने उन भक्तों को अभय कर देता हूँ। इसमें कुछ संदेह नहीं है।

महातमसि मग्नेभ्यो भक्तेभ्यो यत्प्रकाशये ।
विद्युद्वदतुलं रूपं तस्माद्वैद्युतमस्म्यहम् ॥१॥

महा अन्धकार में मग्न भक्तों का उद्धार करने के निमित्त मैं बिजली के समान दीप्तिमान् और निरुपम तेज प्रगट करता हूँ। इसी कारण मैं विद्युत्स्वरूप हूँ ॥ १ ॥

न विमुञ्चति पुण्यात्मा शरण्यः शरणागतान् ।
आयुरारोग्यमैश्वर्यं वित्तं कामांश्च पुष्कलान् ॥२६॥
स ददाति मनुष्येभ्यः स एवाक्षिपते पुनः ।
शक्रादिषु च देवेषु तस्यैश्वर्यमिहोच्यते ॥२७॥
स एव व्यापृतो नित्यं त्रैलोक्यस्य शुभाशुभे ।
ऐश्वर्याच्चैव कामानामीश्वरः पुनरुच्यते ॥२८॥
महेश्वरश्च लोकानां महतामीश्वरश्च सः ।
बहुभिर्विविधै रूपैर्विश्वं व्याप्तमिदं जगत् ॥
तस्य देवस्य यद्वक्त्रं समुद्रे वडवामुखम् ॥२९॥

(भा० अनु० अ० १६१)

वह पुण्यात्मा तथा शरणागत की रक्षा करनेवाले हैं, वह शरणागतों का त्याग नहीं करते, वह भक्तों को आयु, आरोग्य, ऐश्वर्य और धन तथा सम्पूर्ण कामनाएँ देते हैं और (भक्त का हित सोचते हैं तो) पीछा भी खींच लेते हैं, इन्द्र आदि देवताओं में उनका ही ऐश्वर्य विराजमान है, यह बात प्रसिद्ध है ॥ २६ ॥ २७ ॥

वह सदा तीनों लोकों का शुभ और अशुभ करने में परायण रहते हैं तथा ईश्वरत्व के कारण ही सब कामनाओं के ईश्वर कहलाते हैं ॥२८॥

वे लोकों के तथा महात्माओं के महेश्वर हैं, उन्होंने अनेक प्रकार के रूपों से इस जगत् जो व्याप्त कर रक्खा है, उनका जो मुख है, वह वड़वानलरूप से समुद्र में रहता है ॥ २९ ॥

(सांख्य) सांख्यशास्त्र के आचार्य और देवताओं में मान्य कपिलजी–बोले कि मैंने भी अनेक जन्मों तक भक्तिपूर्वक शंकर की आराधना की थी ॥ ४ ॥ तब भगवान् ने मुझपर प्रसन्न होकर मुझे संसारनाशक ज्ञान दिया था।

तदनन्तर इन्द्र के प्रिय मित्र और दयालु आलम्बायन चारुशीर्ष–कहने लगेकि हे पाण्डव! पहिले गोकर्ण तीर्थ में जाकर मैंने सौ वर्ष तक तप किया। जिससे अयोनिज, स्वयंभू, इन्द्रियों का निग्रह करनेवाले, धर्मज्ञ, सुन्दर कान्तिवाले, वृद्धा

वस्था तथा दुःख से रहित और करोड़ों वर्ष की आयुवाले सौ पुत्र मैंने शंकर से पाये ॥ ६ ॥ ७ ॥ तदनन्तर भगवान् वाल्मीकि ने युधिष्ठिर से यह बात कही कि एक समय मुझ से वेद सम्बन्धी विवाद होने पर अग्निहोत्री मुनियों ने मुझे शाप दिया कि "तू ब्रह्महत्यारा है" ॥ ८ ॥

हे भरतवंशी राजन् ! उनके शाप देते ही मेरे शरीर में ब्रह्महत्या का अधर्म घुस गया, तब मैं निर्दोष और भक्त का मनोरथ पूर्ण करनेवाले भगवान् शंकर की शरण में गया। अतएव मैं पाप से मुक्त हो गया और उसी समय दुःखनाशक तथा त्रिपुरविदारक शंकर ने मुझ से कहा कि–"तेरा उत्तम यश चारों ओर फैलेगा" ॥१०॥

परशुराम—सूर्य के समान प्रकाशित होकर कहने लगे कि हे पाण्डवों के वड़े भाई ! पिताजी की आज्ञा से, मैं अपने पिता के तुल्य पूज्य बड़े भाइयों को मारकर बड़ा दुःखी हुआ। हे नृप ! तब मैं पवित्र मन होकर महादेवजी की शरण में गया ॥ ११ ॥ और सहस्र नामों से शंकर की स्तुति की। जिससे भगवान् शंकर प्रसन्न हुए। उन जटा-जूटधारी भगवान् शंकर ने मुझ से कहा कि अब तुझे पाप नहीं लगेगा। तू संसार में अजेय हो जावेगा। कभी भी तेरी मृत्यु न होगी और तू (कभी) वृद्ध भी नहीं होगा। इस प्रकार कहक उन्होंने मुझे परशु तथा दिव्य अस्त्र दिये और उनकी कृपा से वे सब मुझे मिले हैं ॥ १३-१५ ॥

विश्वामित्रजी—ने कहा कि मैं पहिले क्षत्रिय था। मैंने ब्राह्मण होने की इच्छा से शिव की आराधना की और उनकी कृपा से मैंने दुर्लभ ब्राह्मणत्व पद पा लिया है।

असित और देवल ने–पाण्डु-पुत्र राजा युधिष्ठिर से कहा कि हे कुन्तीपुत्र राजा युधिष्ठिर! इन्द्र के शाप से हमारा धर्म नष्ट हो गया था। तब प्रभु ने हमको धर्म, उत्तम यश तथा आयुष्य दी थी।

गृहत्समद्—नामक ऋषि ने अजमीढ़वंशी राजा युधिष्ठिर से कहा कि जब अचिन्त्य इन्द्र सहस्र वर्ष में पूर्ण होनेवाला यज्ञ कर रहे थे। उस समय मैं रथन्तर साम का उच्चारण कर रहा था। इतने में चाक्षुष मनु के पुत्र भगवान् वरिष्ठ ने मुझ से कहा कि–"हे द्विजश्रेष्ठ! रथन्तर साम का उच्चारण ठीक रीति से नहीं हो रहा है"॥ २०–२१॥ अतएव तुम मिथ्या आग्रह को त्याग कर बुद्धि पूर्वक विचार करो। हे सुदुर्मते! तुम ऐसा पाप कर रहे हो कि जिससे यज्ञ का फल ही न मिलेगा॥ २२॥

इस प्रकार कहकर वरिष्ठ ऋषि चुप हो गये; किन्तु अपनी विद्वत्ता के मद से मतवाला होकर मैंने उनकी बातों पर कुछ भी ध्यान नहीं दिया। उनके बार-बार समझाने पर भी मैंने जब नहीं माना तो वे बड़े क्रोध में भर गये और उन्होंने क्रोध के आवेश में शाप देते हुए कहा कि–"तू बुद्धि

रहित, दुःखी, सदा दूसरों से डरता हुआ ग्यारह हजार वर्ष तक पवन,जल, मृग तथा दूसरे प्राणियों से रहित, यज्ञों के काम में न आनेवाले वृक्षों से भरे हुए, रुरु और सिंहों से सेवित वन में महादुःखी मृग होकर रहेगा ॥ २४-२५ ॥

हे पार्थ ! उनके यह कहते ही मैं मृग हो गया। अन्त में मैं भगवान् शिव की शरण में गया। उस समय योगी शिव ने मुझ से कहा कि-"तू अजर-अमर और दुःख रहित होगा, तथा तुझे मेरे समान सुख मिलेगा और तुम दोनों का अर्थात् इन्द्र और तेरा यज्ञ सफल होगा ॥२७॥

भगवान् शंकर इस प्रकार अनुग्रह करते हैं और वे ही सुख तथा दुःख के धाता-विधाता हैं।

वासुदेव-श्रीकृष्ण कहने लगे कि मैंने सुवर्ण के समान नेत्रवाले भगवान् शिव को प्रसन्न किया था ॥३०॥

उस समय हे युधिष्ठिर ! भगवान् महादेव ने मुझ पर प्रसन्न होकर कहा कि-"हे कृष्ण ! तू मेरी कृपा से संसार के लोगों को धन से भी अधिक प्रिय हो जायगा" ॥३१॥

तू युद्ध में अजेय होगा, तेरा तेज अग्नि के समान झलझलाता रहेगा। इस प्रकार महादेवजी ने मुझे सहस्रों वर दिये थे ॥३२॥

जैगीषव्य-ने कहा कि हे राजा युधिष्ठिर ! आज के बहुत दिनों पहिले वाराणसी पुरी में भगवान् शंकर ने बिना प्रयत्न किये ही मुझे आठ गुणवाला ऐश्वर्य दे डाला था।

गर्ग—ने कहा कि हे पाण्डुपुत्र! मैंने सरस्वती नदी के तट पर मानसिक यज्ञ करके शिवजी को प्रसन्न किया था। इस से उन्होंने मुझे चौंसठ अंगवाली कला का अद्भुत ज्ञान, वेद जाननेवाले एक सहस्र पुत्र और मेरी तथा मेरे पुत्रों की दश लाख वर्ष की आयु का वर दिया था।

पराशर—ने कहा कि हे राजन्! मैंने जब शिवजी को प्रसन्न किया तो मनमें विचारा कि महातपस्वी, महायोगी, महायशस्वी, वेद का विस्तार करनेवाले, लक्ष्मी के निवास रूप, ब्रह्मवेत्ता और कृपालु पुत्र प्राप्त हों। देवश्रेष्ठ शंकर मेरे मन की बात जान गये और उन्होंने मुझ से कहा कि "तेरे मन में मुझ से जो वर पाने की इच्छा है, उसको मैं जान गया हूँ। तेरे यहां कृष्ण द्वैपायन नामक पुत्र होगा और वह सावर्णि नामक मनु के समय में सप्तर्षियों में गिना जायगा। वह वेदों का विभाग करेगा और कुरुवंश को स्थापित करेगा।

माण्डव्य—ने कहा कि मैं चोर नहीं था। तब भी राजा ने मुझे चोर होने के सन्देह वश शूली पर चढ़ा दिया था। हे राजन्! मैंने शूली पर से ही भगवान् शंकर की स्तुति की। तब उन्होंने मुझ से कहा कि—"तू शूली से छूट जायगा और एक अब्ज वर्ष तक जीवित रहेगा। हे ब्राह्मण! तुझे इस शूली की पीड़ा नहीं व्यापेगी और तुझे अधिक व्याधि भी नहीं होगी। हे मुने! तेरा यह शरीर धर्म के

चौथे चरण में से अर्थात् सत्य में से उत्पन्न हुआ है, इससे तू सर्वश्रेष्ठ होगा । अब तू अपने जन्म को सफल कर। तू बिना किसी रोक-टोक सब तीर्थों में स्नान करेगा और मैं तुझे अविनाशी तथा प्रकाशित स्वर्गलोक में स्थान दूँगा।"

विद्युत्प्रभ—नामक दानव पर प्रसन्न होकर शंकरजी ने उसे तीनों लोकों का राजा बना दिया था और उसने एक लाख वर्ष तक तीनों लोकों पर राज्य किया। शंकर जी ने उससे कहा था कि—"तू सदा मेरा अनुचर रहेगा।"। प्रभु ने उसे एक लाख पुत्र भी दिये थे। फिर अजन्मा भगवान् की कृपा से उसको राज्य के साथ कुशद्वीप भी मिला था। ब्रह्मा जी ने शतमुख नामक एक महान् असुर को उत्पन्न किया था। उसने सौ वर्षतक बराबर अपने मांस से अग्नि में होम किया। तब शंकर जी ने प्रसन्न होकर उससे कहा कि—"बता, मैं तेरा क्या उपकार करूँ।"

उसने कहा, कि—"मुझे अद्भुत योग दीजिये और हे देवोत्तम ! कभी भी नष्ट न होनेवाला बल भी मुझे दीजिये। उसकी बात सुनकर भगवान् शंकर ने कहा—"तथास्तु"

क्रतु—नामक स्वायंभुव मनुने पुत्र के लिये तीनसौ वर्ष तक योग साधन किया। उसको भी शंकरजी ने चारुशीर्ष के समान ही एक सहस्र पुत्र दिये थे।

याज्ञवल्क्य—नामक एक प्रसिद्ध ऋषि हुए थे। उन्होंने

महादेव की आराधना करके अतुल यश पाया था।

वेदव्यास–जी ने भी शंकर की आराधना करके अतुल यश पाया था।

वालखिल्यों–ने जब तप करके भगवान् शंकर को प्रसन्न किया, तब देवश्रेष्ठ जगत्पति शंकर ने प्रसन्न होकर उनसे कहा कि "–तुम तप करके (स्वर्ग से) अमृत लाने वाले सुपर्ण गरुड़ को उत्पन्न करोगे।"

किसी समय में महादेवजी के क्रोध से जल सूख गया था। तब देवताओं ने जिनके अधिष्ठातृ देवता सप्तकपाल हैं, ऐसे यज्ञ से श्री शंकर का पूजन किया था। तब पृथ्वी में जल आया। इस प्रकार भगवान् शंकर के प्रसन्न होने पर सूखा हुआ जल फिर भर गया था।

विकर्ण–ने भी भक्तों को सुख देनेवाले महादेवजी को प्रसन्न करके सिद्धि पाई थी।

शाकल्य–ने भी नौ सौ वर्ष तक मनोयज्ञ से शंकर की आराधना की थी। इससे भगवान् उन पर प्रसन्न हुए और कहा कि–"तू ग्रन्थकार होगा और हे वत्स! तेरी अक्षय कीर्ति तीनों लोकों में फैल जावेगी। हे उत्तम ब्राह्मण! तेरा कुल अक्षय होगा और तू महर्षियों को उत्पन्न करके कृतकृत्य होगा और हे द्विजश्रेष्ठ! तेरा पुत्र सूत्रकर्ता होगा।

सावर्णि–नामक एक प्रसिद्ध ऋषि थे। उन्होंने एक

आश्रम में छः सौ वर्ष तक तप किया था। उनसे भगवान् रुद्र ने प्रत्यक्ष होकर कहा कि–"हे निर्दोष सावर्णि ! मैं तुझपर प्रसन्न हुआ हूँ। तू लोकों में प्रसिद्ध ग्रन्थकर्ता और अजर, अमर होगा।

इन्द्र–ने भी वाराणसी पुरी में दिगंबर और भस्म से आच्छन्न शंकर की आराधना और शंकर का पूजन कर उसने देवताओं पर राजपद पाया था।

नारद–जी ने भी पहिले भक्तिपूर्वक बहुत दिनों तक शंकर की आराधना की थी। जिससे प्रसन्न होकर दीनदयालु शंकर ने प्रसन्न होकर कहा कि'–तेज में, तप में और कीर्त्ति में तुम्हारे समान और कोई नहीं होगा। तुम सदा गीत गाकर और वीन बजाकर मेरा अनुसरण करोगे।" हे तात! इसी प्रकार मुझे भी पहले देवदेव पशुपति श्रीशंकर के प्रत्यक्षदर्शन हुये थे।

धुंधुमूक ब्राह्मण और उसके पुत्र।

प्राचीन काल में 'धुन्धुमूक' नामक एक सामर्थ्यवान् ब्राह्मण था। उसने एक बार अमावस्या के दिन रुद्र मुहूर्त में दिन के समय ही' अपनी 'शिल्पा' नाम की स्त्री ने उसकी इच्छा विना संगम किया। यथा समय गर्भ के पूरा होने पर शनि, दुष्ट लग्न में माता-पिता का अरिष्टकारक एक दुष्ट पुत्र उत्पन्न हुआ। जननकाल में शिल्पा को बड़ी वेदना हुई। उस समय अशुभ के अनेक लक्षण दृष्टि गोचर होने लगे।

पुत्रजन्म के समय धुन्धुमूक ने ऋषि-मुनियों को बुलाकर उसके विषय में पूछा 'कि यह पुत्र कैसा है?' तब मित्र और वरुण ने कहा—"यह पुत्र बड़ा उत्पाती तथा क्रूर बुद्धिवाला होगा" इसपर वशिष्ठ जी ने विचार करके कहा—"हाँ, यह बालक दुष्ट तो होगा सही, परन्तु बृहस्पति के अनुग्रह से यह सब पातकों से मुक्त हो जायगा। धुन्धुमूक ब्राह्मण यह सुनकर बड़ा दुःखित हुआ, परन्तु क्या करे। प्रारब्धवश सब सहना ही पड़ता है। किसी प्रकार जातकर्म आदि संस्कार करके यथाकाल उसे पढ़ा लिखाकर चतुर बनाया और उसका विवाह भी कर दिया।

कालान्तर में वह ब्राह्मणसुत अपनी स्त्री को छोड़कर अन्य स्त्रियों से व्यभिचार करने लगा और एक शूद्री में आसक्त हो, उसी के साथ मद्यपान करता हुआ वह दुष्ट दिन-रात पापकर्म में लिप्त रहने लगा। खाना-पीना, सोना-जागना, सब काम उसी के यहां करने लगा। महापतित उस ब्राह्मण-पुत्र को सभी हेय दृष्टि से देखने और उसका अनादर करने लगे।

दैवयोग से एक दिन दोनों में घोर विरोध हो गया। इस लिये अवसर पाकर उस नीच ब्राह्मण ने उस शूद्रा को मार डाला। इसपर रुष्ट होकर शूद्री के घरवालों ने उस पापी के दोष से धुन्धुमूक ब्राह्मण का सपरिवार नाशकर दिया; किन्तु वह दुष्ट ब्राह्मण जान बचाकर कहीं निकल भागा। उधर राजा ने शूद्री के परिवार को भी फाँसी की सजा दे दी गई। इसप्रकार

उन दोनों के कुल का नाश हो गया। ठीक कहा है:-

"त्रिभिर्वर्षैस्त्रिभिर्मासैस्त्रिभिः पक्षैस्त्रिभिर्दिनैः ।
अत्युत्कटैः पापपुण्यैरिहैव फलमश्नुते ॥"

उधर धुन्धुमूक का पुत्र भागते २ प्रारब्ध वश बृहस्पति के आश्रम में पहुँचा । देवगुरु बृहस्पति ने उसे ब्राह्मण जान कर पाशुपतव्रत, पंचाक्षर तथा षडक्षर मंत्रों का उपदेश किया। उसने भी महामंत्र पाकर विधिवत् उन मन्त्रों का दो २ लक्ष जप किया और एक वर्षतक पाशुपत व्रत में लगा रहा। अन्त में आयु समाप्त होने पर मृत्युवश वह मृत्युलोक को गया। महाराज यमने उसका बड़ा सत्कार किया और वह शूद्रों द्वारा मारे गये अपने पिता-माता एवं स्त्री को-जो नरक यातना भोग रहे थे-छुड़ाकर स्वर्ग में ले गया। भगवान् शंकर के पंचाक्षर मन्त्र के जाप तथा पाशुपत व्रत के धारण करने से वह पतित ब्राह्मण भी अपने परिवार के साथ स्वर्ग गया। वहां ये सब शिवजी के गणों में मिलकर आनन्द करने लगे। यह भगवान् शंकर के मंत्रों का प्रत्यक्ष फल है, जो पापी मनुष्यों को भी इतना ऊँचा पद दिलाने में समर्थ है। अन्यान्य मंत्रों से * पंचाक्षर या षडक्षर मन्त्र का फल कोटिगुना अधिक है।

* ॐ नमो नारायणाय--यह अष्टाक्षर मंत्र है । ॐ नमो भगवते वासुदेवाय-यह द्वादशाक्षर मंत्र है। ॐ नमः शिवाय-यह शिवजी का षडक्षर मंत्र है । सब कार्यों को सिद्ध करनेवाले इसी

इसमें जरा भी सन्देह की बात नहीं है । जो मनुष्य इस कथा का श्रवण-पठन करेगा अथवा उत्तम ब्राह्मणों को सुनावेगा, वह अवश्य ही शिवधाम को जायगा । लिखा भी है:—

य: पठेच्छृणुयाद्वापि श्रावयेद्वा द्विजोत्तमान् ।
स याति शिवधामं वै रुद्रजाप्यमनुत्तमम् ॥ ३६ ॥

(लिंगपुराण उत्त० ८ अ०)

मानसपूजा ।

तत्र द्रव्याणि मनसा कल्पयित्वा विशोध्य च ।
ध्यात्वा विनायकं देवं पूजयित्वा विधानतः ॥ ३ ॥

(या० सं० अ० २३)

मनसे पूजायोग्य द्रव्यों को कल्पित कर विनायक देव (श्रीगणेशजी) का ध्यानकर विधान से पूजन !करे और भगवान् के दक्षिण में अन्त:पुर के स्वामी साक्षात् नन्दी की

प्रकार के शिवतराय, मयस्कराय, नमस्ते शंकराय—इत्यादि मंत्रों से देवता लोग भी शिवजी का पूजन करते हैं । (१) नम: शिवाय (२) नमस्ते शंकराय, (३ ' मयस्कराय, (४) रुद्राय और (५) शिवतराय—ये पाँचों शिवजी के अमोघ महामंत्र हैं । इनके उच्चारण करने से ब्रह्महत्या आदि महापातक भी उसी क्षण जलकर भस्म हो जाते हैं । महापापी भी "नम: शिवाय" इस महामन्त्र का उच्चारण करके निःसन्देह मुक्त हो जाता है ।

पूजा करे। जो सुवर्ण के पर्वत के समान सब गहनों से भूषित, बाल चन्द्रमा का मुकुट धारे, मनोहर मूर्ति, तीन नेत्र, चार भुजा, हाथमें दीप्तिमान् त्रिशूल धारण किये, मृगीटंक और तीक्ष्णनेत्र युक्त सब कुछ जानने में समर्थ, चन्द्रमण्डल के समान कान्तिमान् और शरीर हरि (मर्कट) के समान मुखारबिन्द, और उत्तर द्वार के निकट मरुत की सुता सुयशानाम (नन्दी) की भार्या जो सुन्दर व्रत को धारे (जगत् जननी) पार्वती के चरण दाबने में तत्पर है, उसका पूजन करके दक्षिण ओर नन्दीश और उत्तर में सुयशा का आराधन कर मन से आसन कल्पित कर रत्नजटित सिंहासन में निर्मल पद्मासन बिछा कर उसके ऊपर उमासहित शोभा से युक्त देवदेव शिव का ध्यान करे। जो सब लक्षणों से सम्पन्न सम्पूर्ण भावों (अङ्गों से) शोभित हैं। ऐसे सम्पूर्ण शक्तियों से संयुक्त अनेकों आभूषणों (गहनों) से भूषित लाल मुख हाथ तथा चरण, कुन्द के समान मनोहर, तथा शुद्ध स्फटिक के समान निर्मल हास्य कमल के फूल के समान नेत्र, चार भुजा, उदार अंग, उत्तम दूज के चन्द्रकला को धारण किये, वरदायक अभय हाथवाले दूसरे हाथ में मृगकंटक, घोर प्रलय में संहार करनेवाले, अस्त्र और सर्पों के हारको नीले गले में धारण किये। सम्पूर्ण उपमा से रहित, सेवक कुटुम्बवर्ग से युक्त, जिन देवेश शिवजी के वामभाग में परमेश्वरी भगवती विराजमान हैं, फूले कमलपत्र के समान कान्तिवाले, विशाल नेत्र, पूर्णचन्द्रमा

की कान्ति के समान मुखारविन्द, नीले घूघरवाले केश, नीलकमल दलके समान मस्तकपर अष्टमी के चन्द्रमा को धारण किये, सुन्दर वस्त्र धारे, दिव्य आभूषण से युक्त, मस्तक में केसर के तिलक, विचित्र फूल गूंथे केशपाश से शोभित, सब गुण सम्पन्न, कुछ लज्जा से नम्र मुखवाली, दहिने हाथमें खिले हुए कमल को धारण किये, जीवों के साक्षात् * कर्म बन्धन का छेदन करनेवाली, सच्चिदानन्दस्वरूपवाली देवी

---

* पाशविच्छेदिकां साक्षात्सच्चिदानंदरूपिणम् ॥
एवं देवं च देवीं च ध्यात्वासनवरे शुभे ॥ १४ ॥
वाराणसी भ्रुवोर्मध्यमविमुक्तं तयोर्भ्रुवः ॥
अध्यात्मेवातिदिष्टं तद्‌भ्रुवोर्घ्राणस्य चान्तरम् ॥
पूजयित्वा विधानेन द्वारपार्श्वेऽथ दक्षिणे ॥ १५ ॥
अन्तःपुराधिपं साक्षान्नन्दिनं सम्यगर्चयेत् ॥
चामीकराचलप्रख्यं सर्वाभरणभूषितम् ॥ १६ ॥
बालेन्दुमुकुटं सौम्यं त्रिनेत्रं च चतुर्भुजम् ॥
दीप्तशूलमृगीटंकतिग्मवेत्रधरं प्रभुम् ॥ १७ ॥
चंद्रबिम्बाभवदनं हारिवक्त्रमथापि वा ॥
उत्तरे द्वारपार्श्वस्य भार्य्यां च मरुतः सुताम् ॥ १८ ॥
सुयशां सुव्रतामम्बां पादमण्डनतत्पराम् ॥
पूजयित्वा प्रविश्यांतर्भवनं परमेष्टिनः ॥ १९ ॥

का और देव का सुन्दर आसन पर इस तरह ध्यान करके सम्पूर्ण उपचारों से भक्तिपूर्वक एकविंशति २१, षोडशोपचार १६, दशोपचार १० तथा पञ्चोपचार ५ से पूजा करै तथा अपने शरीर में मंत्रन्यासादि करके मूर्तिमान् देवदेव शिव सत्-असत् से परे हैं ऐसा ध्यान करे। (अस्यां मूर्तौ मूर्तिमंतं शिवं सदसतः परम्) इस तरह बाह्यक्रमसे ध्यान करके पूजा को निवर्तन करै। पीछे नाभि में समिधा घृत आदि के होम करने की भावना करे और भौंह के बीच में दीपशिखा के समान शिव का ध्यान करे।

भ्रूमध्ये च शिवं ध्यायेच्छुद्धदीपशिखाकृतिम् ।
इत्थमग्रे स्वतंत्रे वा योगे ध्यानमये शुभे ॥ २१ ॥

(वायव्य सं अ० २४)

इस प्रकार अपने शरीर में स्वतन्त्रता पूर्वक * योगध्यानादिकी प्राप्ति करे ॥२१॥

---

* प्रयाणकाले मनसाऽचलेन भक्त्या युक्तो योगबलेन चैव ॥
भ्रुवोर्मध्ये प्राणमावेश्य सम्यक्स तं परं पुरुषमुपैति दिव्यम् ॥१०॥

(श्रीमद्भ० गी० अ०८)

भ्रुवोर्घ्राणस्य च यः संधिः स एष द्यौर्लोकस्य परस्य च संधिर्भवतीति । एतद्वै सन्धिसन्ध्या ब्रह्मविद उपासत इति ।

ग़ज़ल ।

बरदो यही उमावर जब प्राण तन से निकले
शिव २ रहे ज़ुबां पर जब प्राण तन से निकले ॥ १ ॥
काशी में शिव निकट हों श्रीसुरसरी का तट हो
तरु बेल और बट हो जब प्राण तन से निकले ॥ २ ॥
रजनी समस्त गत हो रहे शेष ब्रह्म बेला
ध्वनि होवे शिव शिवा की जब प्राण तन से निकले ॥ ३ ॥
घेरे न मोह माया निर्मल हो मेरी काया
हो शम्भु तेरी साया जब प्राण तन से निकले ॥ ४ ॥
झंझट से मन हटा हो कुछ भी न वासना हो
एक तुमसे लव लगा हो जब प्राण तन से निकले ॥ ५ ॥
अन्तिम विनय ललित की बस इतनी ही है तुमसे
आवागमन-रहित हो जब प्राण तन से निकले ॥ ६ ॥

धुन दीगर

आदि शक्ति जय दुर्गे अम्बे * दुनियां तेरी माया है
दासों का अपराध क्षमा हो * शरणों में तव आया है
है ये प्रतिज्ञा सत्य तुम्हारी * यांच की तो यक बात रही
अज्ञान भ्रम गए दुर सभी * बस अब आगे की बात कही
मातु पिता तुम दोनों हो * दुनिया के ऐसा वेद कहे
शम्भू पिता मातु तुम गिरजा * यही भाव अब बना रहे

चैत ।

मुक्ति मिलत बिनु मांगे हो रामा, काशी नगरिया—टेक
अन्नपूर्णा अन धन नित बांटत, मोल लुटावे शुभ गतिया
हो रामा, काशी नगरिया—टेक
यम कर दम नहीं चलत तनिक तहँ, निरखत खड्ग लहरिया
हो रामा, काशी नगरिया—टेक
ललित चैत चित चेत चलहु झट, अब रहि थोड़ी उमिरिया
हो रामा, काशी नगरिया—टेक

चैत ।

सब तजि चित अब लागे हो रामा, मातु चरणियाँ—टेक
जगदंबा जगजननि दयामई, सुमिरत अब शिवरनियाँ
हो रामा, मातु चरणियाँ—टेक
चारिहु फल पावत जन सहजहि, पकड़त अंब शरणियाँ
हो रामा, मातु चरणियाँ—टेक
ललित मातु पदपङ्कज गहि रहु, जाइ के देहु धरनियाँ
हो रामा, मातु चरणियाँ—टेक

ग़ज़ल ।

हे अन्नपूर्णा !मातु मेरे दोष सब बिसराइये ।
अति दीन हीन मलीन सबविधि जानि मोहिं अपनाइये ॥ १॥
त्रलोक में असकौन है श्रीमुख न है जो जोहता ।

दीजे दरश कीजे दया जन की व्यथा बिनसाइये ॥ २ ॥
मैं अधम निन्दित हूँ अघी सब भांति नीच महा सही ।
पर आपु हैं पारसमणि निज गुन सदा दरसाइये ॥ ३ ॥
हम मोह वश भटके फिरे पर अन्त चरणों में गिरे ।
अब लाज चौकठ की रहे इतते हमें न हटाइये ॥ ४ ॥
शिव विश्व के दानी हैं जो पर आपके भिक्षुक हैं सो ।
हम से हैं काहे रुष्ट वो कुछ तो उन्हें समुझाइये ॥ ५ ॥
लाखों जिस अवलम्ब पर जो २ किये काशी में घर ।
कीजे दया दृष्टि इधर काशी हमें बसवाइये ॥ ६ ॥
हे शारदा शिवभामिनी वरदा सनातननामिनी ।
हे अम्ब अन्तर्यामिनी हम से न कुछ कहवाइये ॥ ७ ॥
बहु रंक अति कंगाल को नित करति आप निहाल हो ।
अब ललित दूषित भाल को दै शरण सुख संरसाइये ॥ ८ ॥

ग़ज़ल ।

जिस की लय हर से लगी वह जग से निर्भय हो गया ।
मुक्त जीवन हो गया वह ब्रह्म तनमय हो गया ॥
है नहीं यम जातना उसको न चौरासी का डर ।
उसका अवगुण ओघ अघ निर्मूल हो क्षय हो गया ॥
मोह माया भी कभी उसको सता सकती नहीं ।
फैसला उसका भी होकर मामिला तय हो गया ॥
जो रहा हर से विमुख उसकी दशा क्या पूछना ।
हो गया बर्बाद उसका जन्म ही लय हो गया ॥

जो किया हर से निरन्तर नेह निश्छल प्रेम से ।
उसका वेड़ा पार हो प्रस्थान सुखमय हो गया ॥
ऐ .ललित ! ऐसाहि है परभाव प्रभु की शरण का ।
जो गया, उसका तुरत उद्धार निश्चय हो गया ॥

गज़ल ।

हे भवानी मातु तुझ को सर नवाता दास है ।
तेरे चरणाम्बुज कि अम्बे इसको पूरी आस है ॥ १ ॥
वह कृपा अरु वह दया अब मातु तेरी क्या हुई ।
मुझ को भूली हो नहीं यह तो मुझे विश्वास है ॥ २ ॥
अंकुरित जब हो रहे थे प्रेम पितु पद स्वप्नवत् ।
उस समय की तेरी दाया देती मुझको हुलास है ॥ ३ ॥
मातु तुम से क्या छिपी हैं मेरी सब दुष्कृत्तियां ।
देखि अपनी अवनति दिल होता निपट निराश है ॥ ४ ॥
मोह माया काम क्रोध अरु विषय मद मात्सर्य ने ।
कर दिया वरबाद मुझको जिससे चित्त हताश है ॥ ५ ॥
मातु इस असहाय बालकको बचालो अपना जान ।
मोह वश मारा फिरा वर अब तो तेरे पास है ॥ ६ ॥
अवगुणों को मेरे माँ निज अञ्चलों से ढाँक कर ।
तात सम्मुख कर दो मुझको-मुझको उनका त्रास है ॥ ७ ॥
ललित फूट २ कर है रोता आगे तेरे है खड़ा ।
आश तेरी मातु है जब तक कि तनमे सांस है ॥ ८ ॥

दण्डपाणिस्तोत्रम् ।

रत्नभद्रागजोद्भूत पूर्णभद्र सुतोत्तम ॥
निर्विघ्नं कुरु मे यक्ष काशीवासं शिवाश्रये ॥६९॥
धन्यो यक्षः पूर्णभद्रो धन्या कांचनकुंडला ॥
ययोर्जठरपीठेऽभूद्दंडपाणे महामते ॥ ७० ॥
जय यक्षपते धीर जय पिंगललोचन ॥
जय पिंगजटाभार जय दंडमहायुध ॥७१॥
अविमुक्त महाक्षेत्र सूत्रधारो गतापह ॥
दंडनायक भीमास्य जय विश्वेश्वरप्रिय ॥७२॥
सौम्यानां सौम्यवदन भीषणानां भयानक ॥
क्षेत्र पापधियां काल महाकाल महाप्रिय ॥७३॥
जय प्राणद यक्षेंद्र काशीवासान्नमोक्षद ॥
महारत्नस्फुरद्रश्मिचयचर्चितविग्रह ॥७४॥
महासंभ्रांतिजनक महोद्भ्रांतिप्रदायक ॥
अभक्तानां च भक्तानां संभ्रांत्युद्भ्रांतिनाशक ॥७५॥
भ्रांतनेपथ्यचतुर जय ज्ञाननिधिप्रद ॥
जय गौरीपदाब्जालेमोक्षेक्षणविचक्षण ॥७६॥

इति ।

बाबूनन्दनप्रसाद द्वारा—सत्यनाम प्रेस, मैदागिन, काशी में मुद्रित ।